Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाक्षिक

सारिका

जून: अंक-२

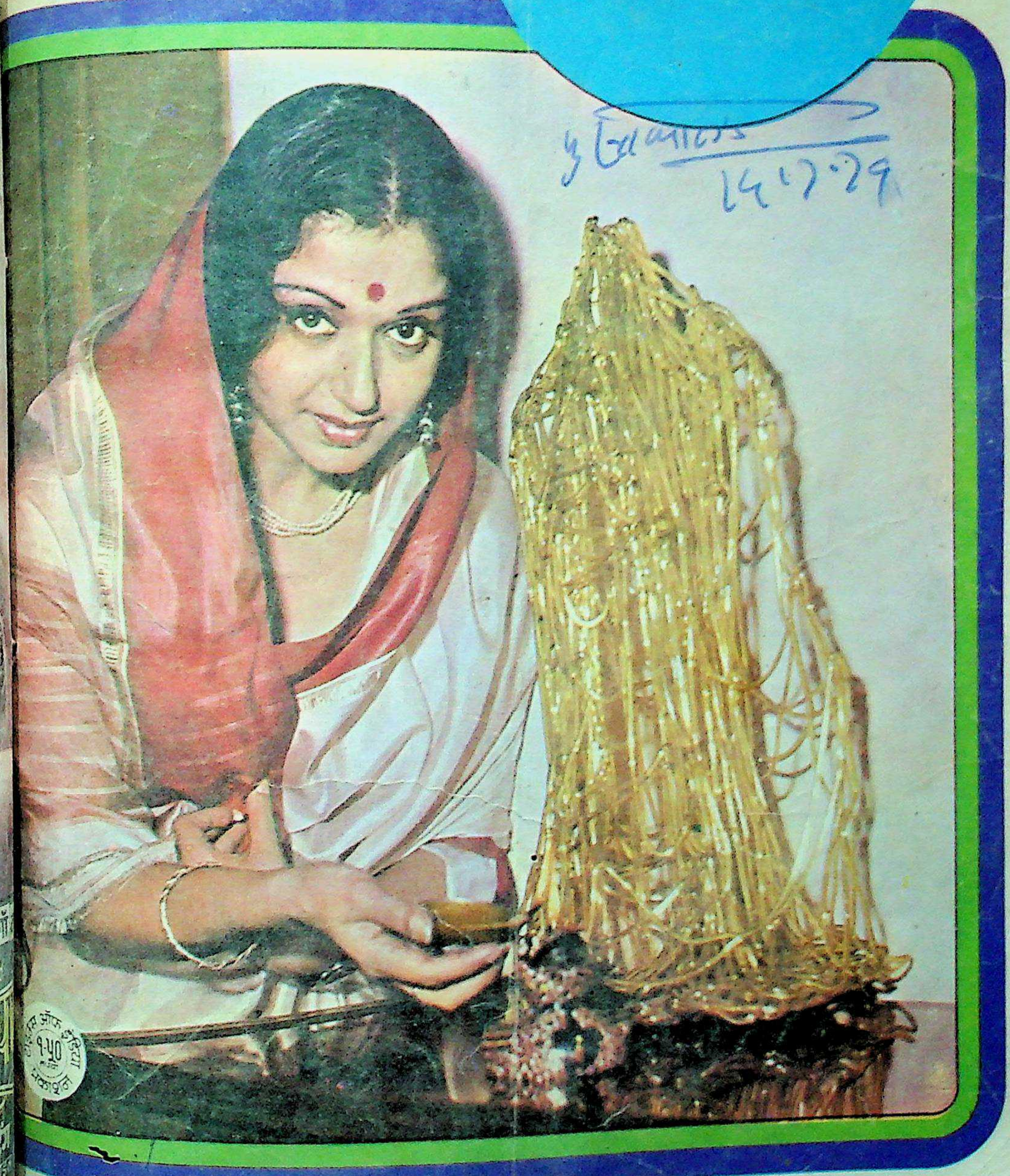

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आप हररोज़ का कामकाज फिरसे करने को उत्सुक हैं?

ग्लैक्सोज़-डी® आपको तुरन्त शक्ति देकर थकान मिटाता है।

ग्लैक्सोज़-डी से आप घर के काम-काज के लिए तैयार हो जाती हैं। क्योंकि ग्लैक्सोज़-डी आप को वह भरपूर शक्ति देता है, जो आप को थकान के बाद फिर से चुस्ती-फुर्ती के लिए चाहिए। डॉक्टरों की सिफारिश पाने वाला ग्लैक्सोज़-डी बहुत उच्च कोटि का ग्लूकोज़ है जो विटामिन-डी, कैल्शियम और फॉस्फरस से युक्त है।

ग्लैक्सोज़-डी आप की थकान मिटाता है और आप को ऐसी शक्ति देता है कि आप मज़े से घर का काम-काज करती रहती हैं।

ग्लैक्सोज़-डी®

सारे परिवार के लिए तुरन्त शक्ति का साधन

dCA/GL/54/HN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

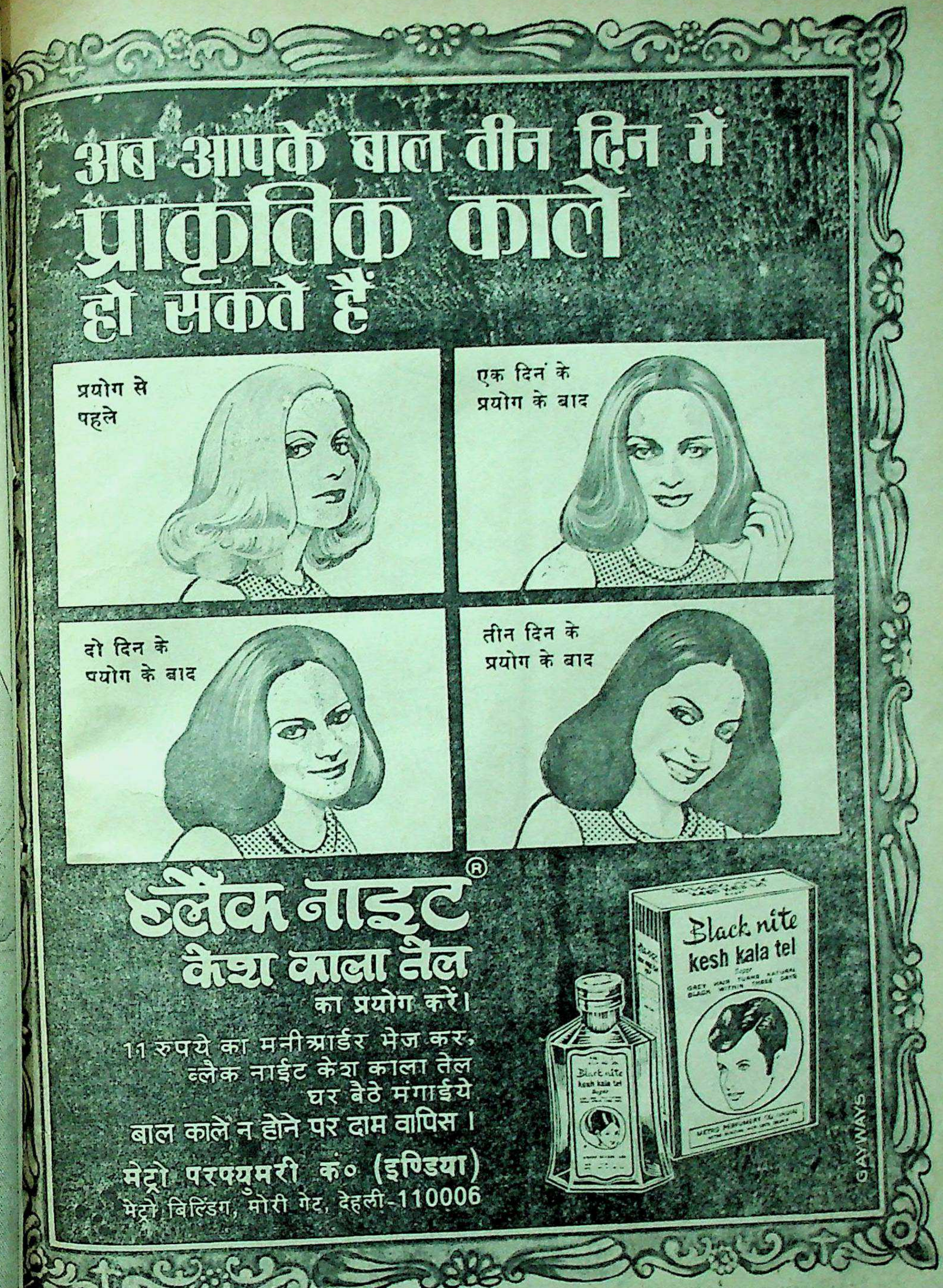

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों का पन्ना

भरेड बिलोचनि वीर

सारिका, मई 79 प्रथम अंक में नंदन जी का तेज, मार्मिक एवं प्रखर बुद्धजीवियों को झकझोरने वाला सम्पादकीय "ये खूनी रात के मंजर" जहां तथाकथित आधुनिक सभ्य समाज पर एक करारा तमाचा है वहाँ सभी मानवतावादी उच्च आदर्शों का खोखलापन उजागर करता है. मृत्युदंड पर ही श्री गिरिजा शंकर का मर्मस्पर्शी लेख "फांसी" को पढ़ते ही नेत्र सजल हो उठते हैं.

☐ आजाद रामपुरी, ग्वालियर

सच्ची तत्परता की ओर

सारिका का मई अंक-1 देखा. जरिया नजरिया के अन्तर्गत "ये खूनी रात के मंजर" में आपने बढ़ती हुई इंसानी नफरत, टूटते मानव संबंधों के प्रति जो विचार रखे, उनकी आज के सुलगते परिवेश में काफी अहमियत है. समय की सिंगतियों और विकृतियों के साये में मानवीय संबंध आज जब केवल ऊब और नफरत पैदा कर रहे हैं, आपका 'सोच' निश्चय ही कई 'सोचों' को गहराई तक झकझोर कर रख देगा. इतना साफ और सटीक संपादकीय···आपको हार्दिक धन्यवाद.

ये खूनी रात······में आपकी बातें न केवल संसार के प्रति संवेदनशील बनाती हैं, वरन मानवीयता के शत्रुओं को पहचानने व उनसे प्रतिरोध करने की शक्ति जुटाने में सहायता भी करती हैं. वे हमें अपने पास भी लाती हैं और इस जहर की ओर आगाह भी करती हैं. वे हमें सजग करती हैं, उकसाती हैं और अपने तई 'मुनासिब कार्रवाई' के लिए हमें संवेदनात्मक रूप से तयार करती हैं. अगर हम उनसे प्रतिकृत होने को तैयार हैं. तो वे हमें सच्ची तत्परता की ओर ले जाती हैं.

☐ राकेश शर्मा, होशंगाबाद (म. प्र.)

प्राकृतिक अधिकार

सारिका मई अंक एक में प्रकाशित जरिया नजरिया स्तम्भ और फांसी: आंखों देखी रपट ने प्रभावित किया. इस वर्ष में जिस गति से फांसियों का सिलसिला चालू हुआ है ऐसा लगता है कि यह अन्तर्राष्ट्रीय फांसी वर्ष हो—जैसा कि आपने भी कहा है. मनुष्य मात्र को जीवित रहने का प्राकृतिक अधिकार है और दण्ड के रूप में उसकी जिन्दगी को छीन लेना तर्क और सिद्धांत की कसौटी पर कभी भी खरा नहीं उतरता. काश, हमारे शासक इस जीने के अधिकार को ... लिए दण्ड व्यवस्था में ... की कोशिश करते. आ... को उठाया, इसके लिए ...

☐ प्रफुल्ल कुमार त्रि...

सैक्स की आशंका

"मंटो विशेषांक" ... खुश हो गयी. इस वि... गोश्त", "...", "नंगी आ... न देकर आपने कई ... दुखाया है.

इससे यह साबित ... भी समाज से डरते हैं ... गोश्त" सरीखी कहानि... भी सैक्स नहीं पैदा हो...

☐ आर० के० कटा... कम्पा कम्पाउंड, म०...

विधिवत पायलागन

सारिका के "नवलेखन अंक" के लिए आपका पत्र ... प्रतिनिधि "नवलेखन तब और अब" के बारे में मुझसे बात... आए थे. वह लगभग एक घंटे तक इस विषय में मेरे विचार सु... नोट्स लेना उन्होंने अनावश्यक माना और बताया कि "हमें तो ... ही कुछ छापना है" मैंने उनसे अनुरोध किया कि इस विस्तृ... से जो "कुछ" आप चुनो उसे लिखकर प्रकाशन से पूर्व मुझे ... दें लेकिन उन्होंने दिखाया नहीं.

संयोग से उस अंक की प्रति हाथ लगने पर मैंने अब ... पढ़ा है और पढ़कर आश्चर्य-चकित रह गया हूं.

भाषा और शैली के संबंध में शिकायत करना भी मेरा ... होगा क्योंकि मैं उन महान लेखकों में से कहां जिनका कहने ... खास अन्दाज होता और माना जाता है.

बहरहाल इतनी शिकायत करने का अधिकार आप ... सकें कि मेरे नाम से छपे वक्तव्य में विचार तक मेरे नहीं हैं.

मैंने बातचीत के दौरान लेखकीय उत्साह के चूक जाने ... यह कहा था कि नई पीढ़ी में शायद कथा-लेखिकाएं ही ... हैं. उनमें ही बराबर लिखते रहने का उत्साह है. दुर्भाग्य ... भी अधिकतर के यहां कोई साहित्यिक महत्वकांक्षा, कोई ... नहीं है. पारिवारिक परिवेश की, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध की, ... पहचाने ढर्रे की कहानियां ही वे लिख रही हैं.

इस बात को उन्होंने मेरे शिवानी-विरोधी बयान के रूप ... करें···इसे ... है. नवलेखन के सन्दर्भ में शिवानी की चर्चा करें···इसे ... मनोहर श्याम जोशी की मौलिक, दिलचस्प और बोल्ड, ... एक नमूना माना होगा. शिवानी, बिरादरी के रिश्ते से, (... को कमाऊंनी समाज में आज भी पूरी तरह माना और ... मनोहर श्याम जोशी की बड़ी बहन हैं, गोरा दी हैं, मनोहर ... विधिवत उन्हें पायलागन करते हैं.

☐ मनोहर ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी उपन्यास की हालत

कुंवर नारायण ने अपने साक्षात्कार में हिंदी उपन्यास की हालत पर टिप्पणी करते हुए भारतीय परंपरा और भारतीय जीवन में विविधता की कमी का जिक्र किया है.

उपन्यास के सन्दर्भ में अनुभव की विविधता ऊपरी तौर पर महत्वपूर्ण लग सकती है, मगर गहरे रचनात्मक स्तर पर ऐसा नहीं है, वही जब एक व्यापक सृजन-दृष्टि के ताव में अपनी स्वायत्ता खो देते हैं तो एक समग्र जीवन-दृष्टि के नियामक बन जाते हैं. जिन दबावों की वजह से मुक्तिबोध की कविताएं एक बिम्ब से दूसरे बिम्ब में फैलती हुई लम्बी हो जाती हैं, संभवतः वैसे ही व्यापक रचनात्मक दबाव की दूसरी प्रक्रिया से उपन्यास की रचना करते हैं.

☐ रवीन्द्र वर्मा, आगरा

आश्चर्य या आपत्ति

"जरिया नजरिया" में यह आपके कहे हैं न--'बच्चे जो मुल्क की अमानत होते हैं, औरतें--जो देश की इज्जत होती हैं, युवक--जो देश की हिफाजत होते हैं और बूढ़े जो गुजरे जमाने का इतिहास होते हैं······

(सारिका मई 79 अंक-1 पृष्ठ 11 कालम तीसरा)

और रेखांकित वाक्य पर आपत्ति है. इसे यूं होना चाहिए था "युवक जो देश के मुहाफिज होते हैं" मुझे आश्चर्य है कि आपसे यह भूल कैसे हो गई.

☐ अशोक कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

अहसान का एहसास

आपने सचमुच अहसान किया है पाठकों के सिर पर. मंटो जैसे महान कथाकार का विशेषांक निकालकर. समस्त सामग्री पठनीय और सराहनीय है. खासकर मंटो की "काली सलवार" बहुत पसन्द आई.

आशा है आगे मंटो की अन्य कहानियां जैसे "बू","ठंडा गोश्त","धुआं" आदि भी अवश्य प्रकाशित करेंगे.

☐ देवेन्द्र पाल सिंह, सिन्द्री, धनबाद

अश्लील क्यों ?

"काली सलवार" और "खुशिया" जैसी निहायत संजीदा कहानियों को पता नहीं लोगों ने क्यों अश्लील कहा था? "खोल दो" कहानी पढ़कर पाठक किसी तरह भी उत्तेजित नहीं होता अपितु मन करुणा से भर जाता है. सब मिलाकर "मंटो विशेषांक" अच्छा बन पड़ा है, बधाई.

☐ कुमारगुप्त, राजोपट्टी, सीतामढ़ी

जादू सा असर

रेणु अंक के बाद, 'मंटो' अंक और फिर हेमिंग्वे विशेषांक की तैयारी है, इस कड़े परिश्रम के लिए सारिका परिवार धन्यवाद का पात्र है. आपने सचमुच कुशल सम्पादन, रुचिकर संयोजन के द्वारा पाठक-वर्ग पर जादू-सा कर दिया है.

☐ सूर्यकान्त त्रिपाठी, शेरपुर, मिर्जापुर

संग्रहणीय अंक

मंटो विशेषांक सारिका के पूर्व विशेषांकों की तरह ही अधिक आकर्षक व रोचक रहा. यह विशेषांक वाकई में मंटो विशेषांक साबित हुआ क्योंकि उसमें "मंटो" संबंधी साहित्य के अतिरिक्त अन्य सामग्री अन्य विशेषांकों की तरह प्रकाशित नहीं की गई है. इस विशेषांक द्वारा मंटो साहित्य उपलब्ध कराया गया होने से सारिका का यह अंक संग्रहणीय है.

☐ गोपाल आचार्य, मंदसौर, म०प्र०

विस्तृत गहराइयां

पिछले आठ साल से सारिका का नियमित पाठक हूं. कुछ और भी साहित्य पढ़ा, मैंने महसूस किया है कि आमतौर पर लेखक डिक्सनरी के सीधे सादे परिवेश से उठाकर शब्दों को अजीव-अजीव, और कई बार अभूतपूर्व परिवेश में डाल कर अपनी कहानी कहता है, मगर मंटो की कहानियां पढ़ी तो लगा कि एक आम आदमी बैठा कहानी कह रहा है, जिसके सीधे-सादे शब्द अपने आप में विस्तृत और गहराइयां लिए हैं.

☐ राजकुमार यादव, कुरुक्षेत्र

निवेदन

दो वर्ष की अवधि में आंध्र प्रदेश दूसरी बार समुद्री तूफान से आक्रांत हुआ. लाखों व्यक्तियों का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया और धन-जन की भारी हानि हुई.

पाठकों से हमारा विनम्र निवेदन है कि वे 'टाइम्स सहायता कोष' में उदारतापूर्वक दान दें. सहायता कोष में दी जाने वाली राशि पर दायक आय-कर कानून, 1961 की धारा 80-ग के अधीन कर में छूट का हकदार होगा. बीस रुपये या इससे अधिक राशि देने वालों के नाम टाइम्स आफ इंडिया में प्रकाशित किये जायेंगे.

दान राशि नकद, चेक/ड्राफ्ट के जरिये 'द टाइम्स आफ इंडिया रिलीफ फंड' के नाम से हमारे नयी दिल्ली, बंबई, अहमदाबाद, कलकत्ता, मद्रास और पुणे स्थित कार्यालयों को भेजी जा सकती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात्कार

अपने जीवन की तीन चौथाई सदी जैनेन्द्रजी पार कर चुके हैं इन पचहत्तर वर्षों में उन्होंने जितने साहित्यिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक बदलाव को देखा है उस सब को सारिका के पाठकों तक पहुंचाने के लिए तीन व्यक्तियों द्वारा अपना-अपना उनसे साक्षात्कार करवाया गया.

आज से पचास साल से भी पहले जब जैनेन्द्रजी ने लिखना शुरू किया, प्रेमचंद्र, चतुरसेन शास्त्री, माखनलाल चतुर्वेदी : प्रभृति लेखक रचनारत थे। तब से अब तक उनके समकालीन लिखने वालों की संख्या हजारों में होगी पर जैनेन्द्रजी ही एक ऐसे लेखक हैं जो इस लंबे अरसे तक बराबर लिख रहे हैं। साहित्य के अतिरिक्त राजनीति व संस्कृति-दर्शन पर भी उनकी कलम बराबर चलती है। इन सभी विषयों पर उनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं.

स्वाधीनता संग्राम में जैनेन्द्रजी ने सक्रिय रूप से भाग लिया था, उसके अपने वेतन पर प्रभाव के बारे में उन्होंने स्वयं ही बताया है: 'जो एक रचनात्मक रूप था आंदोलन का, वह मेरे लेखन में सीधा नहीं आया. मेरे मन में जो जो प्रश्न उठते रहे, मैंने उन प्रश्नों का समाधान अपने लेखन में और उसके द्वारा खोजने की कोशिश की. वे प्रश्न राजनीतिक नहीं थे, साहित्यिक भी नहीं थे ······इसलिए मेरे साहित्य में समय, समाज या राष्ट्र कोई सीधा नहीं आया है······मेरे मन में इस सारे राजनीतिक कर्म के पीछे कोई बहुत मनोरम भाव, रोमांटिक भाव, स्पृद्धा का भाव बढ़ नहीं पाया.' (मेरे भटकाव: पृष्ठ 66-67)

तो अब प्रस्तुत हैं तीनों साक्षात्कार—पहला स्वतंत्र लेखक योगेश गुप्त द्वारा, दूसरा सारिका परिवार के सुरेश उनियाल द्वारा तथा तीसरा प्राध्यापक डा० कमलकिशोर गोयनका द्वारा.

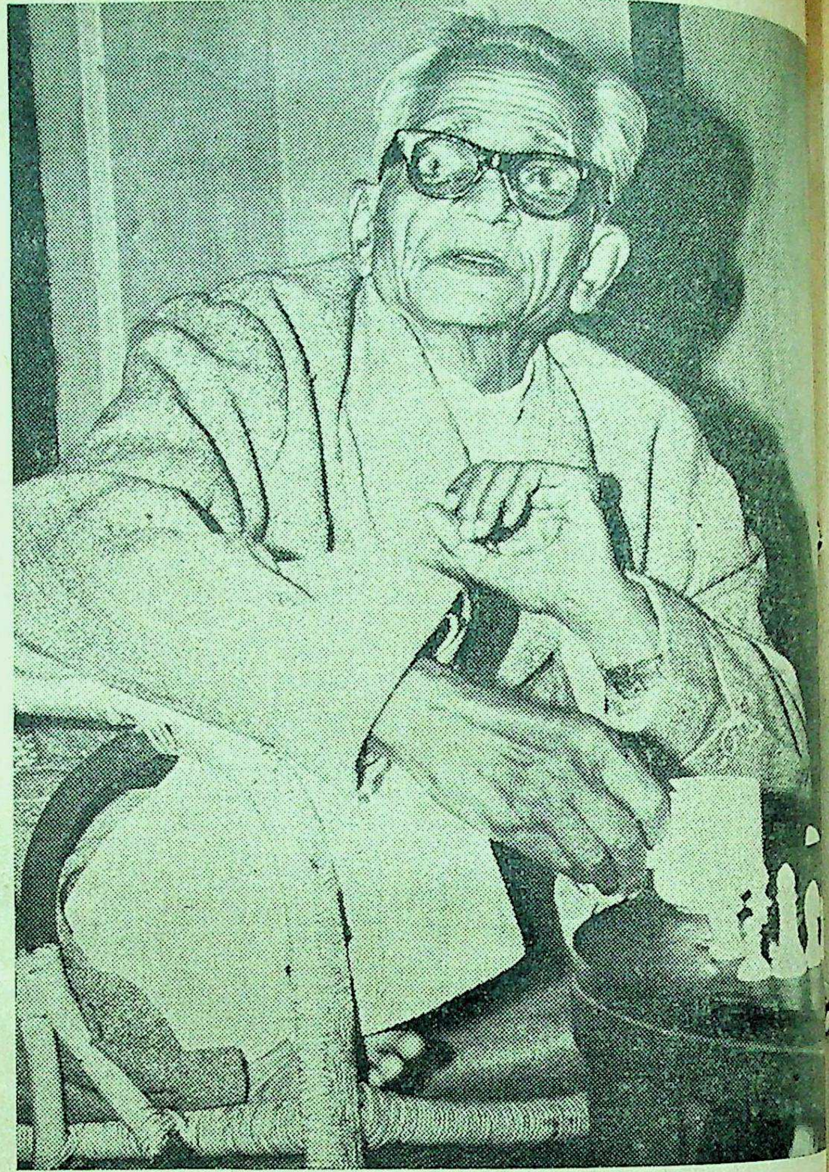

"कहानी के आंदोलन से जुड़कर किसी ने भी अपना या साहित्य का हित नहीं किया"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहला साक्षात्कार : योगेश गुप्त द्वारा

'मानसिक रूप से मैं बेहद विरोधों के बीच जीता हूं!'

लगभग पचास साल से आप हिंदी साहित्य में सक्रिय हैं और अपने समसामयिक लेखकों को ही नहीं, नये लेखकों को भी आप बराबर पढ़ते रहे हैं. इन वर्षों के लेखन, उसकी दशा, उसके विकास या ह्रास पर आपकी व्यापक प्रतिक्रिया क्या है?

साहित्य कोई बंद चीज तो है नहीं और समाज में प्राणी को दोहरा जीवन जीना पड़ता है. साहित्य की तरफ जिसकी रुचि हो, उसमें तो यह दोहरापन और भी तीखा बन जाता है. यानी व्यक्ति समाज में सहज सफल नहीं होता वो अनिवार्यतया कल्पनाजीवी और बुद्धिजीवी हो चलता है. समाज में उसे काम तो चाहिए ही, पर समाजोपजीवी बनना उसके लिए कठिन होता है. परिणाम में जो उसके भीतर द्वंद्व हो चलता है, लेखन का स्वरूप अधिकांश उसी से निर्धारित होता है.

मेरा लिखना शुरू हुआ तब मूल्य कुछ निश्चित थे और लेखन उसी आदर्शोपासना में हुआ करता था, इसलिए आसानी से वह सुधारवादी और रोमांटिक हो जाया करता था. धीरे-धीरे इसमें फर्क आया. फर्क इसलिए आया कि समाजमान्यता लेखक को अपेक्षतया बहुत ही कम प्राप्त थी. पहले का लेखक समाज की नैतिक धारणाओं को पुष्टि देता था और एवज में कुछ उसकी स्वीकृति पा ज. ता था. अर्थात् वह लेखक अपने अभ्यंतर में लेखन द्वारा लोकप्रतिष्ठ होना चाहता था. हिंदी कथा परंपरा में शायद पहली बार प्रेमचंद ने समाज-मूल्यों की पड़ताल में जाना शुरू किया, लेकिन असल में पैसे की—जिस पर प्रतिष्ठा निर्भर करती है—उधेड़बुन में वह गये पर कदाचित् उसकी जगह किसी दूसरे मूल्य को उदय में लाने की बात तक वह नहीं पहुंच सके. परिणाम में निषेध का स्वर तो आया पर वैकल्पिक रचना का चित्र नहीं उभर सका. मानो पैसे के समक्ष एक आदर्शवादी भावुकता को ही उन्होंने प्रतिष्ठा दी. कुल मिलाकर हासिल यह हुआ कि पैसे की संख्या ढीली नहीं हुई यद्यपि उसकी निंदा होती गयी.

प्रेमचंद के अनंतर लोगों को लगा कि विश्लेषण काफी तीखा और गहरा नहीं है और आदर्श से उसे ढका नहीं जा सकता. उसमें से भावुकता उत्पन्न होकर रह जाती है, प्रचलित मूल्यों पर गहरा आघात नहीं लगता. मानी गयी नैतिकता स्वयं विश्लेषणीय हो सकती है और लेखन के स्वर में सामाजिकता को ही मानो चुनौती दी जाने लगी. एक शब्द चलता था छायावाद. उत्तर में आया यथार्थवाद. विश्लेषण और अस्वीकार के आग्रह ने मूल्यों की ओर से आने वाले नियमन को ही इंकार कर दिया. माने, कदर्य और कुत्सित को ही प्रतिष्ठा दी जाने लगी. यह सब कुछ बाहर का द्वंद्व था, यानी समाज में अपनी अपनी मान्यता द्वारा प्रतिष्ठा पाने का द्वंद्व.

मुझे प्रतीत होता है कि प्रेमचंद के तत्काल नहीं तो कुछ बाद प्रगतिवाद नाम की जो लहर आयी उसमें यही सामाजिक, राजनीतिक प्रतिष्ठा पाने के द्वंद्व का स्तर प्रधान है.

संक्षेप में मुझे कहने दीजिए कि इन पचास सालों में से गुजर कर मुझे लगता है कि अब आकर कथा रचनाएं तितली की तरह इस कदर खूबसूरत हैं कि सोच में पड़ जाना पड़ता है कि यह खूबसूरती अगर टिक सकती तो—?

आपके मतानुसार हिंदी साहित्य निरंतर ऊपर से सजा-धजा और अंदर से खोखला होता जा रहा है. आपने साफ तो नहीं कहा, पर उसका एक कारण शायद आप प्रगतिशील आंदोलन को मानते हैं और दूसरा कारण साहित्य के व्यापारीकरण को. क्या ये बातें इतने ही स्पष्ट तौर से कही जा सकती हैं? या कारण कुछ और भी हैं?

व्यापारीकरण या साहित्य का राजनीतिकरण दोनों क्या स्वयं में अकारण हो सकते हैं. मेरा संकेत था कि साहित्य को इन आधुनिकीकरणों पर दोष फेंकने के सिवाय उनके और भी मूल कारणों की खोज में जाना चाहिए. मैं जानता हूं कि जिंदगी हठात् और अनावश्यक रूप से जटिल बनायी जा रही है और उस जटिलता को ही बुद्धिवाद का सेहरा पहनाया जा रहा है. साहित्य को उस लालच में नहीं पड़ना चाहिए. जीवन सहज और अकृत्रिम हो सकता है और आज की तमाम गूढ़ जटिलता का चित्रण कथा में इस प्रकार रचित और चित्रित किया जा सकता है कि प्रभाव सहजता के पक्ष में पड़े और उसको जटिलतर बनाते जाने की सभ्यता के प्रति चमत्कारी भाव उत्पन्न न हो, वरन उसके प्रति हमदर्दी जगे. मैं मानता हूं कि उस जटिलता के चक्र में पड़े व्यक्ति के भीतर जो उत्कट और उन्मुक्त भोगाभिमुखता है वह मूलतः उसके भीतर की ऊब और कराह का ही प्रक्षिप्त और प्रच्छन्न रूप है. उसमें अपनी कोई यथार्थता नहीं है. अर्थात् भोगाभिमुख सभ्यता की भर्त्सना और लांछना करने की आवश्यकता नहीं, वरन सहानुभूति पूर्वक उसे अंतरंग से समझने की आवश्यकता है. आदर्शाभिमानी पुरुष जो आसानी से निंदा पर उतर आता है वह उसकी मात्र क्षतिपूर्ति का प्रयत्न है, किसी आदर्शनिष्ठा का प्रमाण नहीं. साहित्य में किसी प्रकार के गर्व के टिकने का स्थान नहीं है. अपने को अध्यात्मिक, धार्मिक, नैतिक आदि मानने वाले महाशय जो ऊपर से देखकर किसी के प्रति तुच्छ भाव अपना लेते हैं, वे सिर्फ अपना दंभ दर्शाते हैं और इस परिपाटी के व्यक्ति साहित्य के लिए सर्वथा वर्जित हैं. ऊपर आपने प्रगतिवाद का नाम लिया. मैं मानता हूं कि इस दिशा में प्रगतिवाद ने (अनजाने ही सही) सचमुच बड़ी सेवा की है.

आपने कहा कि जीवन अनावश्यक रूप से जटिल बनाया जा रहा है. इसे थोड़ा स्पष्ट करेंगे.

अनावश्यक शब्द शायद बहुत सही न हो. पैसा उद्योगवाद के प्रवेश से अनिवार्यतया बढ़ता जा रहा है. इतना कि हर संबंध अर्थाश्रित होने को बाध्य है. इस तरह मानव संबंध सरल नहीं रहते, क्योंकि इस कारण बने से होते हैं कि पैसा बीच में आने से दोनों ओर अपने अलग स्वत्व और स्वार्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की चेतना हो आती है. एक बार आपमें अलग स्वत्व की चेतना जगी तो नाना प्रकार के छद्म और कौशल के परस्परता के बीच प्रविष्ट होने की भूख बन आती है. अनावश्यक की जगह इस तरह जटिलता को आवश्यक भी कह दिया जा सकता है. फिर भी मैं अगर उसे अनावश्यक कहता हूं तो इसलिए कि मनुष्य के यह वश में होना चाहिए कि वह संबंधों को अधिक हार्दिक रहने दे. और आर्थिक प्रयोजनों के अधीन बनने से उन्हें बचा ले. मानना होगा कि यह दिन-दिन कठिन होता जा रहा है. सभ्य रहने के लिए यह आवश्यक हो रहा है कि घर को तरह-तरह के सामान असबाव से, ड्राइंगरूम वगैरह से ठीक-ठाक रखा जाये और जीवन पर काफी हद तक पैसे का काबू आ जाने दिया जाये. बस ये सब बातें मजबूरियां बन जाती हैं और आदमी जरूरी मान लेता है कि धरती पर बैठकर थाली में से भोजन नहीं खाया जा सकता. डाइनिंग टेबल पर प्लेट में से ही खाने का तरीका एक तरीका है. अगर इस सब खटराग को मैं अनावश्यक कहूं तो क्या गलत है? पर दिल्ली में रहकर मैं ही जानता हूं कि घरवाले किस कदर नाराज हैं मुझसे, कि ढंग की एक डाइनिंग टेबल भी नहीं है. सच यह है कि उसके अभाव पर सचमुच गर्व या गौरव का अनुभव नहीं करता. ऊपरी सरंजाम को अनावश्यक जटिलता आसानी से मैं चाहे कह दूं लेकिन उसके लपेटे से बरी होना उतना आसान नहीं है.

पूछना चाहता था कि आपकी दिनचर्या क्या है. पर मैं अपने प्रश्न को इस तरह रखना चाहूंगा कि पिछले पच्चीस सालों से मैं आपको इसी स्थान पर इसी जगह उसी सरलता से बैठा हुआ देखता रहा हूं. इससे आपको ऊब या बेचैनी नहीं होती? आपने क्यों इस एकरसता को नहीं तोड़ा?

ऊब और बेचैनी क्यों नहीं होती होगी, पर मुझे आस्तिकता क्या मिली कि उसने मुझे सदा के लिए निकम्मा कर दिया, यानी मेरे मन में निश्चय हो गया कि मैं अपने लिए कुछ नहीं कर सकता. अपने बारे में सोचना या करना ही पाप है. यानी मैं अपनी भौतिक परिस्थितियों में अपनी ओर से कोई परिवर्त्तन नहीं चाह सकता हूं. दूसरा मेरे बारे में सोचे कौन, नतीजा यह कि मैं वहीं का वहीं हूं. इसकी शिकायत ही मुझमें नहीं हो सकती. दूसरे यह भी कि मैं अपने को कभी किसी काबिल नहीं मान सका. इसलिए उस दिशा में अब कोई कल्पना भी नहीं उछलती. हठात् चाहे प्रतिक्रियास्वरूप हो, मन में मैंने यह बिठा लिया है कि इस व्यवस्था में देखना ऊपर की तरफ नहीं है, निगाह नीचे को रखनी है. इस कारण इन हालात में रहते हुए भी मैं पाता रहा हूं कि मैं जरूरत से ज्यादा भाग्यवान हूं.

आस्तिकता क्या आवश्यक रूप में भौकिता का नकार होती है?

नहीं. एकदम नहीं. पर भौतिक आकांक्षाओं में जरूर वह निगल जा सकती है.

एक अशिष्ट प्रश्न! आपके विषय में बाहर यह प्रसिद्ध है कि आप कहते यह हैं जो आपने ऊपर कहा है पर हैं बहुत अर्थलोलुप. बल्कि कुछ लोग लोग तो यहां तक कहते हैं कि आप क्योंकि भौतिक स्तर पर कुछ प्राप्त नहीं कर सके उसी कुंठा में से आपने यह अपरिग्रह का आभास देने वाला दर्शन गढ़ा है.

कहने वाले बिल्कुल ठीक कहते हैं. कारण मेरे अपरिग्रह दर्शन के पीछे अवश्य वह हो सकता है जो वह बताते हैं. लेकिन मेरे खुद के झूठे होने से दर्शन तो झूठा नहीं हो जाता.

आपके विचार से पिछले पचास वर्षों में साहित्यकारों में साहित्य के प्रति निष्ठा कम हुई है और साहित्य के माध्यम से कैरियर बनाने का लालच बढ़ा है. इसे क्या आप अधिक खोलकर कहना चाहेंगे? साथ ही यह कि कौन लोग हैं जो इस व्यामोह से बच पाये हैं?

लिखनेवालों और लिखाई के महत्त्व को जाननेवालों की दो अलग किस्में हैं. महत्व का संबंध कुछ जुड़ जाता है बाजार से और समाज से. बुद्धिमान व्यक्ति उस पहल के बारे में बेध्यान नहीं रह सकता. इसलिए वह आसपास अपने समूह चाहता है और एकाकिता की व्यथा से छुटकारा पा लेता है. पर साहित्य एक का एक के साथ संबंध उपजाता है और गहरा करता है. सामुदायिकता उसके लिए असंगत है. इसलिए मैं मानता ही नहीं, अनुभव से सिद्ध भी पाता हूं कि कहानी के बारे से जितने भी आंदोलन चले, उससे जुड़कर किसी ने अपना या साहित्य का हित नहीं किया, अहित ही साधा. उनकी रचनाओं में जैसे मांग बैठने लगी कि वे बाहर स्वीकृत और प्रशंसित हों. उसी मात्रा में वे रचनाएं अपने कर्त्ता के अंतरंग से दूर होने लगीं और मानो, 'फॉर इफैक्ट' लिखी जाने लगीं. दूसरे शब्दों में उनमें सच के साथ असच और सहज के साथ असहजता का मिश्रण हो जाने लगा. आंदोलनों के और उनके ध्वजाधारियों के अलग-अलग नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए. ध्वजा हाथ में लेने की आवश्यकता के मूल में क्या सीधे ही असाहित्य नहीं देखा जा सकता?

मुझे लगता है कि समूह की सत्ता में चलती ही है, वर्गवाद, जातिवाद है, समाजवाद है, राष्ट्रवाद है. इनके बीच में जो खो जाता है, वह है मनुष्य. मैं मानता हूं कि साहित्य उस मनुष्य की प्रतिष्ठा के व्रत से टूट नहीं सकता. सामूहिकता के चक्कर में फिर-फिर उसे लाने की कोशिश करने से राजनीति को उस पर प्रधानता मिलने का यत्न होता है जो कभी सफल नहीं होता. राजनीति तत्काल में इतनी लिपटी रहती है कि उसके पास अपनी कोई दिशा नहीं रह जाती. दिशा उसको प्राप्त होती या हो सकती है साहित्य से. इसलिए वे लोग जिन्होंने साहित्य से तत्काल में ठोस सफलता भी प्राप्त की उनको बधाई है. लेकिन तत्काल के साथ साहित्य का संबंध तर्कशः मीठा हो नहीं सकता. यह केवल इस कारण कि साहित्य पर भवितव्य का खिंचाव रहता है और यथास्थिति का भोग उसके भाग्य में नहीं है.

इसमें आप देख सकेंगे कि जो साहित्य के क्षेत्र में विज्ञ बनकर आये वे साहित्य में बल नहीं पहुंचा सके. कारण, साहित्य को उन्होंने अपने को नहीं दिया, साहित्य से अपने लिए कुछ पा लेने की ही चेष्टा में उनका लिखना होता गया. इसलिए उस क्षेत्र की विज्ञता से मुझे सदा डर लगता रहा है. तत्संबंधी अज्ञता में मुझे अधिक संभावनाएं दीखती हैं और मैं कह सकता हूं कि चर्चाओं और गोष्ठियों में से निकले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरणा और विचक्षणता प्राप्त की है, उन्होंने सारगर्भ इतना नहीं लिया है जितना अलग-थलग दूर-दूर रह जाने वाले जिज्ञासु जन दे सके हैं.

सुना है आप आजकल अपना बहुत-सा समय शतरंज को देते हैं. कारण क्या यह है कि आपके पास कहने या करने को कुछ भी और नहीं बचा है?

शतरंज शुद्ध बचाव है. बचाव उस जबर्दस्त उलझन से, जिसमें मैं अपने को घिरा पाता हूं और शतरंज में भाग छूटता हूं. उलझन तो कहने और करने के लिए अनूठी पूंजी भी हो सकती है. हां, शर्त यह कि उसके उपभोक्ता कम और दृष्टा अधिक हो चलें. शायद वही नहीं हो पा रहा. इसलिए लिखना-करना स्थगितप्राय है.

उलझन आपकी व्यक्तिगत है या चारों तरफ के परिवेश—सामाजिक, राजनीतिक में जो एक जड़ता और ह्रास दीख रहा है उसके कारण?

उलझन का पूरा निदान हाथ आ जाये तो कट ही न जाये. इमर्जेंसी के वक्त मैं इंदिराजी से घोर असहमत था. यह जैसे उन पर वैसे और सबके समक्ष भी प्रगट करता गया पर प्रशंसक उनका जैसे तब था वैसे अब भी हूं. मोरारजी और जयप्रकाश दोनों गांधी-भक्त हैं पर मेरी गांधी-भक्ति उनका भी समीक्षक होने से मुझे रोक नहीं पाती. इस तरह मानसिक रूप से मैं बेहद विरोधों के बीच जीता हूं. कैसे झेल रहा हूं उस सब अंतर्द्वंद्व को, मैं नहीं जानता. शायद शतरंज उस सबके लिए बड़ा सहारा है. बार-बार सोच उठता है कि उठूं और सबको उपन्यास में बांधकर बिखेर दूं पर दो-एक मिनट उस पहाड़ से अंधियारे को सामने करके देखता हूं तो घबरा जाता हूं और शतरंज की तरफ चल उठता हूं. अपने से अकेले मुझसे कुछ हो नहीं पाता. 'जयवर्द्धन' लिखा गया तब जवाहरलाल जीते थे. तब भी मन में घुमड़न चलती थी. एक साहब आये और जिद बांध बैठे कि कुछ लिखना होगा. जवाहर लाल के प्राइम मिनिस्टर स्तुति की बात दूसरी, वैसे उस नाम को मुंह तक कैसे लाया जाये, पर

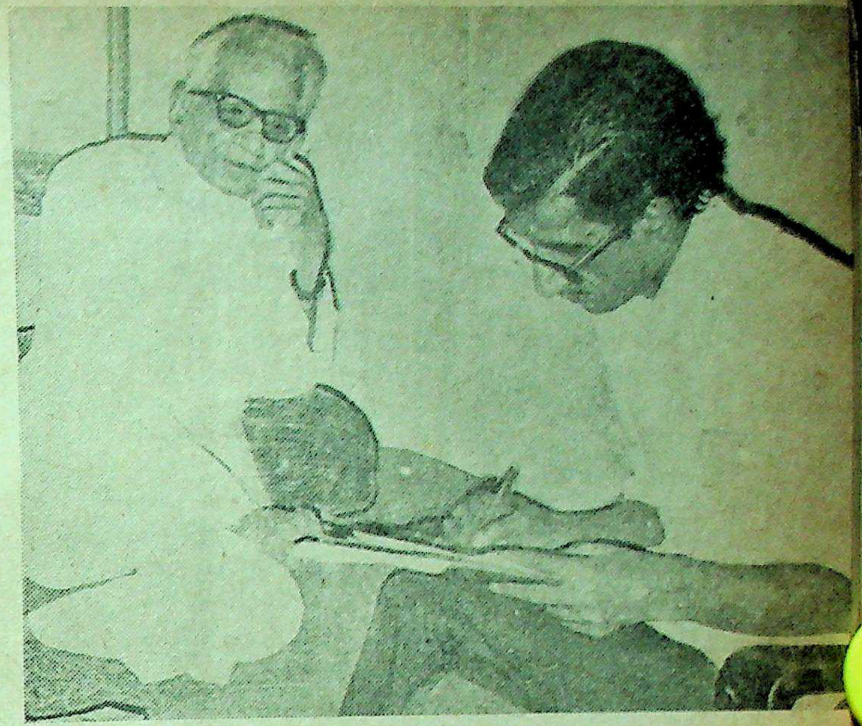

'अस्तिकता ने मुझे सदा के लिए निकम्मा बना दिया'

मन की उस हालत में उस नाम के बिना लिखाया कैसे जाये. इसलिए सन दो हजार आगे उसे डाल दिया और किताब शुरू हो गयी. कौन जाने कोई नया जिदवाला आ टकराये और जो चीज भीतर व्याधि बनकर परेशान कर रही है बाहर किताब की शक्ल में आकर वह शक्ति का उपकरण बन जाये. अब यह सब उलझन कितनी वैयक्तिक है कितनी निर्वैयक्तिक, मैं नहीं जानता. बाहर के और अंदर के सब सवालों से अलग कहानी उपन्यास गढ़गढ़ाकर कैसे प्रस्तुत किये जा सकते हैं मुझे नहीं मालूम. खुद मुझसे तो ऐसा नहीं हुआ. सच मानिये, प्रेम की समस्या और राष्ट्र की समस्या मुझे दो अलग-अलग नहीं लगीं. न कुछ मेरे लिए सत्य हो सकता है वह जो या तो नितांत मेरा है या नितांत मेरा नहीं है. सत्य एक साथ जगतिक और आत्मिक हो, उस सत्य को ढूंढ लेना चाहता हूं इस अपार और अथाह द्वंद्व में जो मेरे भीतर-बाहर चारों ओर है. आप देखते ही हैं, मुझमें भरा गहरा अंतर्विरोध है. द्वैतहीन अद्वैत भला हो कैसे सकता है. हो तो वह होने से पार है. यानी वह सब लेखन और आलेखन झूठ है जिसमें तनाव नहीं है, द्वंद्व की पीड़ा नहीं है. शांत समाधान जो दे डालता है वह शायद उसी कारण सच नहीं रहता और मुझे लगता है कि वह लेखक की सचाई में से आया हुआ नहीं हो सकता.

एक बात कहूं, साहित्य से और कहानी से वह एकदम दूर की बात है. भारत में आज तरह-तरह का अनैक्य फूट रहा है. जनता पार्टी फूटगी और सब फूटेगा. नहीं आ सकता ऐक्य वहां पर, जहां उसे ले आने का प्रयत्न किया जा रहा है. एकता आयेगी या तो बाहर के आक्रमण के उत्तर में या उस भीतर जाग पड़ सपने में से जो सारे यथार्थ से प्रबल हो जाये. इसलिए मेरा मन यथार्थ से उचटकर सपने में जाता है तो मुझे बुरा नहीं लगता बल्कि कभी-कभी जो होता है कि सपने से मैं ऐसा जुड़ जाऊं कि पैसेवाला सब यथार्थ अयथार्थ हो जाये.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा साक्षात्कार : सुरेश उनियाल द्वारा

'प्रेम विवाह में बंद नहीं हो सकता!'

कुछ समय पूर्व 'धर्मयुग' में आपके 'पत्नी और प्रेयसी' संबंधी वक्तव्य को लेकर एक लंबी-चौड़ी परिचर्चा चली, जिसने लगभग विवाद का रूप ले लिया. फिर भी मुझे लगता है कि उस परिचर्चा में भाग लेने वाले लेखक आपकी बात को पूरी तरह समझे बिना ही वक्तव्य दे रहे थे.

मुझे समझने की आवश्यकता ही उनके लिए क्या थी! वे अपनी समझ की बात कह रहे थे, इतना काफी है.

मैं विवाह संस्था में विश्वास रखता हूं, लेकिन वह संस्था समाज ने अपनी सुव्यवस्था के लिए नाना प्रयोग करने के अनंतर अपने बीच स्थापित की. किंतु मनुष्य को समाज ने नहीं, ईश्वर ने उपजाया है. अपने भीतर जो कुछ सामग्री लेकर मनुष्य सृष्ट हुआ है, वह उसे प्रकृति और परमेश्वर से प्राप्त हुए हैं. इसमें सबसे मूल्यवान तत्व है प्रेम. वह प्रेम-विवाह में बंद नहीं हो सकता. कोशिश की जाती रही है, पर यह संभव नहीं हुआ है. प्रेम के कारण समाज व्यवस्था सदा गड़बड़ाती रही है, और यह अनिवार्यतः टाली नहीं जा सकती. जाति, राष्ट्र, धर्म के दायरे बने हैं और आशा की जाती है कि उसकी मर्यादाएं सुरक्षित रहेंगी. पर अंतर्जातीय, अंतर्धर्मीय, अंतर्राष्ट्रीय प्रेम संबंध हुए हैं, और कभी यदि मनुष्य को, राष्ट्र को या जगत को मुक्ति प्राप्त होगी तो वह उस प्रेम की प्रेरणा को अंगीकार करने के द्वारा ही हो सकेगी. इसलिए मैं कहता हूं और लिखता आया हूं कि पत्नी या पति में प्रेम समाप्त नहीं हो सकता. प्रेयसी और प्रेमी की स्थिति या उपस्थिति सदा अनिवार्य रहती चली जायेगी. परिपूर्ण प्रेम का नाम मेरे निकट ब्रह्मचर्य है. मुझे प्रतीत होता है कि मर्यादाओं पर बाहर से अत्यधिक बल डालने से व्यभिचार की समस्या और संभावना जितनी बनती है, प्रेम को मुक्त मानने के द्वारा समस्या की उत्कंठता कम होगी और वैसी घटनाएं भी कम होंगी.

प्रेम स्वयं अपने भीतर से मर्यादा की सृष्टि करता है और यदि हम समाज में संस्कारिता का विकास देखना चाहते हैं तो उसी मर्यादा के महत्व को उत्तरोत्तर स्थान देना होगा जो अंतस्थि प्रेम में से व्यक्तित्व को प्राप्त होती है. मनोविज्ञान में जाने की जरूरत नहीं है, यह अनुभव करने के लिए कि बलपूर्वक अपनाया गया संयम विस्फोट की संभावना ही पैदा करता है.

अभी आपने कहा है कि परिपूर्ण प्रेम का नाम मेरे निकट ब्रह्मचर्य है. मैं समझता हूं आपकी यह बात थोड़ा विस्तार चाहती है.

जिसको हम प्रेम करने लगते हैं वह उपलक्ष्य होता है, प्रेम का लक्ष्य सदा पार रहता है. इसलिए देखा जाता है कि प्रेमी और प्रेमिका यदि भोग को एक बार प्राप्त हो जाते हैं तो प्रेम वहां से भाग छूटता है और अपने लिए नया आसरा ढूंढ़ता है. प्रेम के लिए आवश्यक है कि बीच में व्यवधान हो और लक्ष्य के प्रति कामना जग सके और चल सके. प्राप्त के प्रति संबंध कर्त्तव्य का हो चलता है, प्रेम सदा अप्राप्त और अप्राप्य की ओर बढ़ता है जो सदा-सदा के लिए अप्राप्त और अप्राप्य रहने वाला है, वह है परमेश्वर. प्रेम का असल और अंतिम गंतव्य वही है. प्रेमी और प्रेयसी में मानो क्षण के लिए उसी की झलक मिलती है और इसलिए प्रेमाकर्षण अनिरोध्य प्रतीत होता है. जो सदा-सर्वदा अप्राप्य; अतः काम्य रहने वाला है, उसके प्रति जो चर्या अर्पित होगी वही ब्रह्मचर्य है. वैराग्य संयम और विग्रह इत्यादि की भाषा ब्रह्मचर्य के यथार्थ को पाने में मुझे बहुत ओछी मालूम होती है. वह मुक्त है, आनंदमय है, जो कि है. प्रेम उसी तल्लीनता का नाम है. उसे किसी बाहरी तपश्चर्या आदि से जोड़ना मानो चिन्मय को निश्प्राणता की साधना द्वारा पाने के प्रलोभन में पड़ना है. प्रेम में जीवन का निषेध नहीं है,

'सेक्स को मैं आध्यात्म के बाद सबसे पवित्र और महत्व का विषय मानता हूं?'

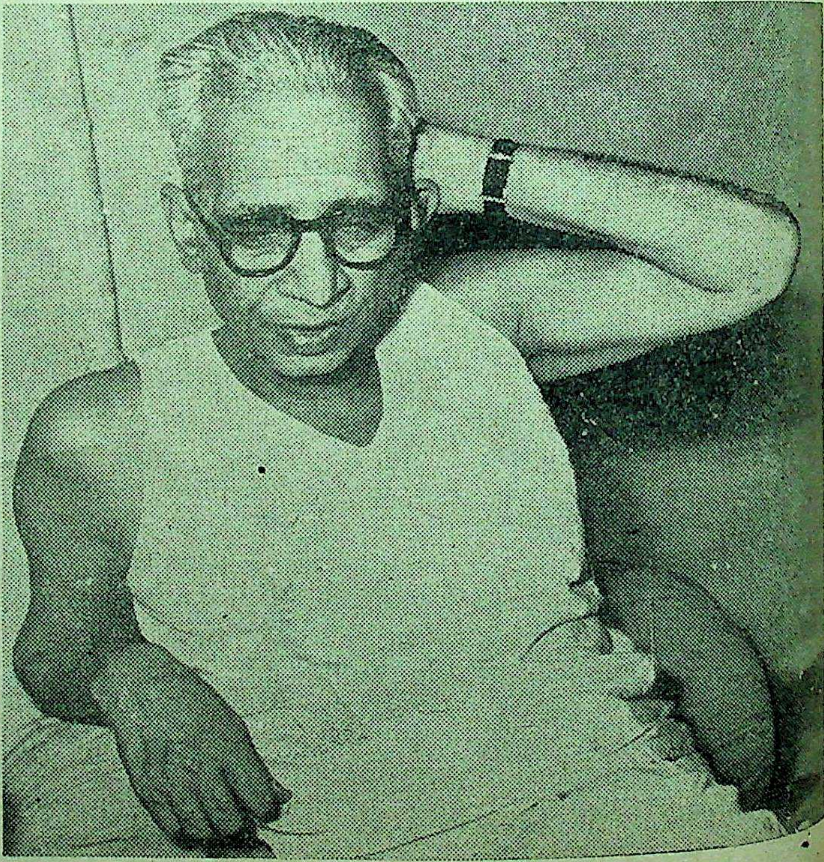

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्युत उसकी पूर्णता है.

कभी अश्लीलता के प्रश्न पर आपने विचार किया है?

हां. काफी पहले यह प्रश्न मेरे सामने इस रूप में आया था कि एक लंबे लेख में मेरी 'ग्रामोफोन रिकार्ड' कहानी को अश्लील बताया गया था. अपने प्रति लगाये गये अभियोगों की मैंने शायद ही कभी सफाई दी हो. पर अश्लीलता पर मुझे लिखना हुआ था. नग्नता से अश्लीलता का कोई संबंध नहीं दीखता और न किसी शरीर व्यापार से उसका संबंध है. अश्लीलता भीतर मन के छल में है. यहां चावड़ी बाजार पहले 'रैडलाइट एरिया' था, कोठों पर वेश्याएं आवश्यकता से अधिक ही बनाव-शृंगार करके बैठती थीं. कपड़ा शरीर पर परिमाण से कम नहीं, ज्यादा ही होता था. पर मुझे ऊपर देखते संकोच होता था, किसी सामाजिकता के कारण नहीं, दृश्य की अश्लीलता के कारण. मध्यप्रदेश के वन प्रांतर में नग्नप्राय गोंड युवतियों को भी देखने का अवसर आया. वहां तनिक भी जुगुप्सा का भाव मैंने अनुभव नहीं किया.

सेक्स को मैं आध्यात्म के बाद सबसे पवित्र और महत्व का विषय मानता हूं. मेरे मन में सदा विस्मय रहा कि ईश्वर की ओर से सृष्टि का मंत्र संभोग की क्रिया में निहित है. व्यभिचार शब्द कहकर हम एक प्रकार से शक्ति का सामना लेने से अपने को बचा लेना चाहते हैं. आखिर विवाह के द्वारा उसी संभोग को हम एक संस्कारी अनुष्ठान का रूप देते हैं. अर्थात् इस विषय में साहसपूर्वक हमें वैज्ञानिक रुख अपनाना होगा. अपनी परिपक्वावस्था में गांधीजी के ब्रह्मचर्य के प्रयोग अनेक गांधी अनुयायियों और नीतिवादियों को असह्य हुए थे. गांधी तब नग्नप्राय होकर रहते थे. एक षड्यंत्र-सा है कि गांधी के उस रूप को प्रकाश में न आने दिया गया. पर मैं मानता हूं कि उनकी महात्माई की असली कुंजी वहां मिलेगी.

तो इसका अर्थ यह हुआ कि स्त्री के प्रति पुरुष में तथा पुरुष के प्रति स्त्री में जो आकर्षण होता है, वह शाश्वत नहीं है. उसे दबाया या कम किया जा सकता है.

पुरुष जब तक है स्त्री के आकर्षण से उत्तीर्ण नहीं हो सकता. यही बात स्त्री के संबंध में माननी चाहिए. यह उसी परस्पर आकर्षण का प्रतीक है जिस पर ब्रह्मांड थमा है. उपाय उस आकर्षण को जीतने का, सिवा अर्द्धनारीश्वर के आदर्श के दूसरा नहीं हो सकता. नर, नारी को अपने भीतर उतार ले, तभी वह इस आकर्षण से उत्तीर्ण इस कारण हो जायेगा कि उसे बीच में प्रतीक की आवश्यकता नहीं रह जायेगी. सीधे परमात्माकर्षण उस पर काम कर रहा होगा. धरती से अमुक ऊंचाई पर पहुंचकर भारहीनता प्राप्त हो जाती है और कुछ अनंतर अगर चांद के निकट पहुंचें तो उसका गुरुत्वाकर्षण काम करने लगता है. इसीलिए मैं फिर कहता हूं कि प्रेम में व्यक्ति अपने को छोड़ दे तो वह अनायास ब्रह्मत्व को प्राप्त होगा. काममय प्रेम कभी अनुपस्थित नहीं होता. इसलिए काम की निंदा से मैं सदा बचता रहा हूं. हां, प्रेम अवश्य निष्काम हो सकता है. मेरी रचनाओं में भोग का इसीलिए परिहार जब नहीं मिलता है तब उस भोग में मेरी ओर से प्रतिष्ठा त्याग की ही की जाती है. 'त्यागपत्र' क्यों पाठक को बांध पाता है, इसीलिए न कि पति को छोड़कर कोयलेवाले के साथ माने गये व्यभिचार में रहती हुई भी उसमें विसर्जन की दीप्ति दीख पाती है. व्यसनासक्ति का आरोप पाठक उस पर नहीं डाल पाता. दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सतीत्व के आदर्श को मैंने पातिव्रत्य से निरपेक्ष देखा है और पाठक उस प्रसूती से असहमत कितना भी हो, अप्रभावित नहीं रहता. कुल मिलाकर यह कहना होगा कि सेक्स के संबंध में हमें स्वस्थ और साहसिक रुख अपनाना होगा. पारंपरिक दृष्टिकोण उस विषय के साथ न्याय करने में अपर्याप्त सिद्ध हो रहा है.

साहित्यिक कृतियों के फिल्मांकन को लेकर समय-समय पर काफी विवाद पैदा होते रहे हैं. 'शतरंज के खिलाड़ी' का अंत परिवर्तित करने पर कई लोग काफी नाराज भी हुए हैं. क्या आप 'त्यागपत्र' के फिल्मांकन से संतुष्ट हैं?

मैंने वह फिल्म देखी नहीं है. फिल्म की दुनिया का मुझे कोई अता-पता नहीं था. और न ही है. दिन हुए, चेतन आनंद ने कहा कि तुम्हारी त्यागपत्र पर फिल्म बनाने का मैंने निश्चय किया है. मैंने कहा, 'आठ-दस लाख रुपया अपना डुबाना हो तो यों ही क्यों नहीं समुद्र में फेंक देते! त्यागपत्र फिल्म के लिए नहीं है.' लेकिन उन्होंने अपना दृढ़ निश्चय बताया. उस समय जहां मैं ठहरा था, वहां पहुंचने के लिए खासे अंधेरे में से जीना चढ़ना होता था. वह जगह चेतन आनंद को 'त्यागपत्र' की कहानी के कोयले वाले की जगह के लिए बेहद उपयुक्त जंची और मानो निश्चय और प्रबल हो गया. किंतु एक ऊंचे आदर्श की फिल्म में उन्हें कभी गहरा घाटा हो चुका था. बोले, 'घाटे की पूर्ति के लिए एक सस्ती फिल्म बना लें. फिर 'त्यागपत्र' लेंगे. क्योंकि, इसके लिए मार्किट देश में नहीं, इंटर-कांटीनेंटल हो सकेगा.' बात आयी-गयी हो गयी. उसके बाद गुरुदत्त के प्रतिनिधि आये और फिल्म के लिए मेरी पुस्तक मांगने लगे. मैंने यह कहकर उन्हें बैरंग लौटा दिया कि पहले मुझे प्रमाण मिलना चाहिए कि पुस्तक के साथ न्याय हो सकेगा. संयोग कि गुरुदत्त स्वयं दिल्ली आये तो मैं बंबई में बैठा था. फिर तो उनका देहांत ही हो गया. अब 'त्यागपत्र' पर बनी फिल्म का किस्सा ये कि बंबई में मुझे फोन मिला. मैंने कहा, मुझसे मिलने से कोई लाभ नहीं. मैं आपको नहीं जानता.' अगले दिन अरविंद (माधुरी के तत्कालीन संपादक) को साथ लेकर वो महाशय उपस्थित हो गए और ऐसे 'त्यागपत्र' की कहानी फिल्म के लिए उनकी बन गयी. आगे मुझसे उसका कैसे कोई सरोकार नहीं रह गया. सिनेरियो की स्क्रिप्ट तक मैंने नहीं देखी. सुनते हैं, फिल्म पूरी हो चुकी है. एक-आध जन मुझे बता गये हैं कि पुस्तक के साथ अन्याय नहीं हुआ है, पर मुझे भरोसा हो नहीं पाता.

ऐसा क्यों ?

फिल्म शरीर के माध्यम से कथा को प्रस्तुत करती है. मैं अपने लिखने में उस माध्यम का कम से कम सहारा लेता हूं. यह साहित्य और फिल्म में गहरा व्यवधान डाले रखता है. मालूम होता है, बीच में कुछ आर्थिक प्रपंच आ गया है और बनी-बनायी 'त्यागपत्र' की फिल्म प्रदर्शित नहीं हो पा रही है. यह मेरा उस तरफ ध्यान नहीं है और फिल्मी जगत से मैं उतना ही दूर और कोरा हूं जितना था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"दिगंबरता को मैं सबसे बड़ी उपलब्धि मानता हूं!"

कहानी या उपन्यास लिखने की प्रेरणा जीवन से सीधे मिलती है या उसके प्रति निर्मित अपने दृष्टिकोण से?

जीवन का भोक्ता नहीं लिखता, दृष्टा ही लिख पाता है अर्थात भोग से निवृत्ति सृजन के लिए आवश्यक है.

यह भोग से निवृत्ति क्या है?

निवृत्ति इंकार नहीं है, वह स्वीकार है तब का, जब आप उससे उपराम पा चुके हैं.

पर यह निवृत्ति सृजन कैसे कराती है?

भोग के दर्शक हैं, इसलिए उसे वर्णन और चित्रण में लाने की क्षमता आपको प्राप्त हो जाती है. देखने के लिए कुछ अंतर चाहिए. भोक्ता और भोग में वह अंतर रह नहीं जाता, इसलिए भोग का अनुभव, अनुभव रहता है, अनुभूति नहीं बनता. सृजन के लिए अनुभूति सहायक होती है. अनुभव देश-काल से बंधा है, अनुभूति उत्तीर्ण है और मुक्त है. अनुभूति आत्मपरक है, यद्यपि अनुभूत अपने से तनिक अलग भी रहता है.

क्या यह सत्य है कि एक कांग्रेस कार्यकर्त्ता के रूप में आपने अपना जीवन आरंभ किया?

हां, यह सत्य है. अगर विवाह से पहले के जीवन को जीवन कहा जाये.

परंतु आपने यह सक्रिय राजनीति क्यों छोड़ दी?

इसका जिक्र 'मेरे भटकाव' में आ जाता है. सन् 1930 में 'नौजवान भारत सभा' दिल्ली में बनी और 'नौजवान भारत सेना' के एक जुलूस में इस सेना के अनेक युवकों पर लाठियां पड़ी और कुछ उसमें मर तक गये. मैं उनका नायक था. इसलिए पंक्ति में नहीं था. अलग से चलने की सुविधा थी. नतीजा कि मैं उस लाठियों के हमले से एकाएक बचा रह गया, पहला लाठीवाले सिपाहियों का दौर निकल गया, तब कश्मीरी गेट के डाकखाने के सामने घास पर खड़े मुझ पर सिपाहियों की निगाह पड़ी. दो-चार लाठी के वार मुझ पर पड़े और मैं आसानी से वह सह गया, लेकिन मन में आया कि अगर मैं हटा नहीं, भागा नहीं तो सिर्फ इसलिए कि पैर जैसे जम गये थे, यानि मैंने देखा कि अंदर मेरे भय था. मैं मानता था और मानता हूं कि अहिंसा की लड़ाई में भय के लिए जगह का नेतृत्व ले सकने के आयोग्य हूं. भय जीता जा सकता है सिर्फ प्रेम से. वह जीत पाऊंगा, तब राजनीति के प्रति मेरा यह भाव खत्म हो जायेगा.

क्या कभी गांधीजी ने आपको कांग्रेस एंव खादी प्रचार का कार्य करने के लिए प्रेरित किया था?

उनका आह्वान सबके लिए हुआ कि समग्र ग्रामसेवक बनो. विचार मुझे पसंद आया. उस संबंध में मैं गांधीजी से मिला था, लेकिन गांधीजी ने देख लिया कि मैं स्वयं अपने विचारों से खाली नहीं हूं. इसलिए फिर तनिक भी उस ओर मुझे प्रेरणा देने की उन्होंने चेष्टा नहीं की. गांधीजी की महत्ता की छाप मुझ पर यही है कि वे किसी को अपना अनुगत देखना नहीं चाहते थे.

गांधीजी से क्या कभी आपने अपने लिए कर्तव्य पूछा था और क्या उन्होंने आपको कुछ परामर्श दिया था?

नहीं. न मैंने सीधा कर्तव्य मांगा, न कभी उन्होंने देना चाहा. पर एक बात मार्के की याद आती है. मैंने कहा, 'बापू, आपसे डर लगता है.' गांधी एकदम बोले, 'तभी तो मैं बचा हुआ हूं.' आशय कि भय का भी एक रचनात्मक उपयोग है और उन्होंने भय निकालना नहीं चाहा, बल्कि जैसे उसे उचित माना.

अब मैं दूसरे प्रश्नों पर आता हूं. क्या आपने जीवन में व्यथा की गहन अनुभति की है?

गहन जाने किसे कहते हैं? व्यथा से मुक्त तो एक क्षण के लिए भी शायद ही हो पाया हूं. शब्द चलता है—संत्रास. हां, संत्रास तो उसे कह नहीं सकता. शायद कारण हो कि व्यथा की गहनता पर्याप्त होने पर ही उसे संत्रास की संज्ञा मिल सके.

पर यह व्यथा नितांत व्यक्तिगत है या सामाजिक या अन्य कोई?

व्यथा संभव परस्परता के आधार पर ही हो सकती है. अन्य और इतर की इसमें स्वीकृति आ जाती है. संबंध से अलग तो समाज की स्थिति कोई है नहीं, इसलिए सामाजिक या वैयक्तिक आदि विशेषण उसके लिए अनावश्यक हैं.

क्या आपकी भोगी हुई व्यथा ही आपके साहित्य में आयी है?

नहीं तो और क्या आया है! किंतु भोगा हुआ सब स्मृति का अंतराल पाकर सहानुभूति परक हो जाता है अर्थात वह निजता से मुक्त हो जाता है.

परंतु आपने अनेक बार कहा है कि मेरा साहित्य चिंतन से निकलता है. फिर ऐसा क्यों?

ऊपर जो अंतराल कहा गया है, उसका आशय यही है कि अनुभूत के साथ चिंतन अथवा दर्शन का नाता बन जाता है, तादात्म्य टूट जाता है. सहानुभूति परक होते ही व्यथा की प्रकृति बदल जाती है. वह जैसे आत्मिक बन जाती है. व्यथा को आत्म से जोड़ना उचित नहीं लगेगा, पर मैं, आध्यात्मिक शांति जिसे कहा जाता है, उसे इसी ... प्राणों की बेचैनी के अर्थ में लेता हूं.

क्या आपके कलाकार की मनोभूमि में दार्शनिक का पदार्पण अतिक्रमण की ... नहीं है?

जहां तक मैं देख पाता हूं, नहीं है. ... मैं मानता हूं कि मैं ढंग का कथाकार नहीं हूं. मुझमें जानने की भूख अधिक ... इसलिए मेरा लिखना जैसे प्रश्न ... अवसान पाता है. मैं सुधारक हो ... सकता उतनी निश्चिति मेरे पास नहीं ...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके साहित्य में अनेक स्थानों पर ऐसा क्यों प्रतीत होता है कि आपके दार्शनिक ने आपके लेखक पर कब्जा कर लिया है?

कब्जा किस दिन नहीं था! जिस जैनेंद्र को लेखक पाया गया, तब भी वह उस कब्जे से मुक्त नहीं था.

क्या यह सत्य है कि धन के अभाव के कारण आपका उसके प्रति अधिक मोह रहा है?

हां! और वह पते की बात है.

अपने लेखन के साथ प्रकाशन का व्यवसाय क्यों अपनाया, जबकि आप देख चुके थे कि आपके स्वभाव के अनुकूल नहीं है.

बड़े बेटे दिलीप के कारण.

आजकल आप क्या लिख रहे हैं?

कुछ नहीं.

आपके कुछ उपन्यास अधूरे पड़े हैं, क्यों?

दिलीप टाइपराइटर लेकर बैठ जाता था और कुछ लिखा ही लेता था. अब वह नहीं है और इसलिए सब ठप है.

आप 'दशार्क' नाम से जो उपन्यास लिख रहे हैं, वह कब तक पूरा हो जायेगा?

हां, दिलीप ने वह शुरू करा लिया था और कुछ एक परिच्छेद से हुए भी थे. बस वह वहीं के वहीं छूटे पड़े हैं.

आपका परकीयादर्शन क्या जीवन और साहित्य दोनों के लिए है?

दर्शन अगर दर्शन है तो एकांगी कैसे होगा?

आप अपने जीवन में आयी परकीयाओं के बारे में कुछ बतायेंगे?

विवाह में प्रेम बंद नहीं होता, नहीं हो सकता, यानी प्रेम मुक्त है और कोई सिवा पति-पत्नी के, उसके लिए अपात्र नहीं है. पति-पत्नी अपात्र बनते हैं तो केवल इस कारण कि उन्हें परस्पर भोग की अनुभूति प्राप्त है, अर्थात इसी वैध भोगानुभूति के कारण प्रेम में वहां अमुक्त बनने की संभावना हो जाती है.

मेरे प्रश्न का सीधा जवाब नहीं मिला.

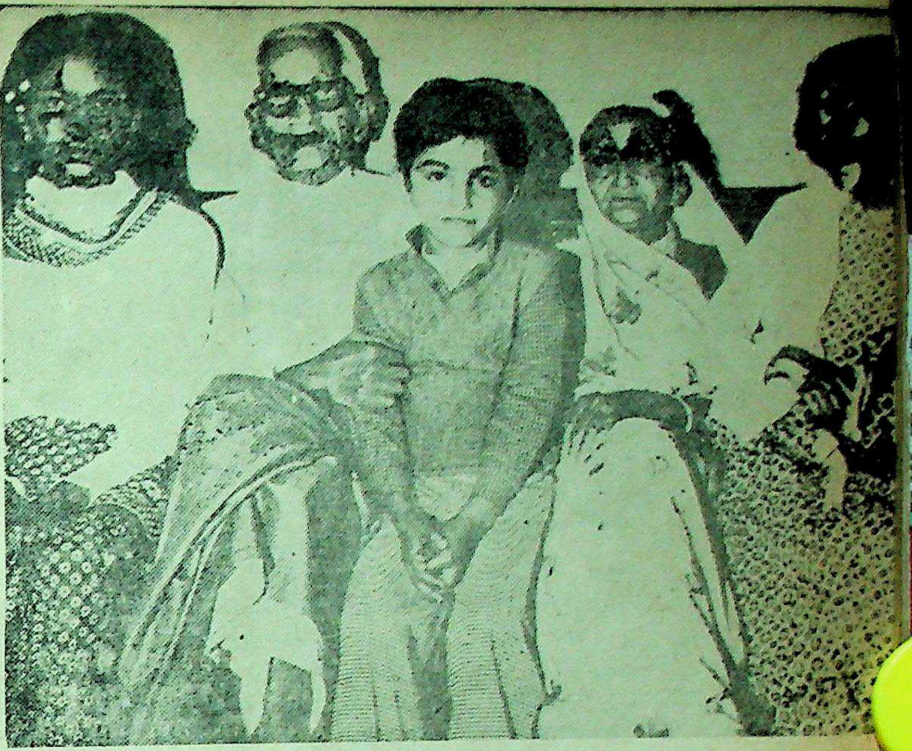

श्रीमती और श्री जैनेंद्र तीसरी पीढ़ी के साथ

सीधा-टेढ़ा जो कुछ है, यही जवाब है.

फिर भी, आप क्या बतायेंगे कि परकीया प्राप्ति की लालसा एवं प्राप्ति की अनुभूति क्या होती है?

परकीय शब्द में भाव है—अप्राप्त और दुर्लभ का. इसलिए उस प्रेम में वियोग-विरह की बेचैनी बनी रहती है. यह बेचैनी प्रेम का लक्षण है, पर याद रखना चाहिए कि प्रेम में परकीय कुछ रह नहीं जाता है. परकीय शब्द मात्र वहां रूढ़ और समाजिक होता है, वास्तविक नहीं होता, अर्थात प्रेयसी उस दुर्लभता के कारण पत्नी से अधिक स्वकीय हो जाती है.

क्या एक लेखक के रूप में आपने ऐसा पाया कि अनेक परकीयाएं आपसे जुड़ना चाहती हैं?

यह कैसे कहा जाये कि अगर चाहती हैं तो उस चाहत के कारण ही जुड़ी हुई नहीं हैं.

पर लेखक को छोड़िये, व्यक्ति के रूप में कितनी परकीयाएं आपके जीवन में आयी हैं?

अपना कच्चा-चिट्ठा आपके हाथ में दं तो क्यों?

शारीरिक प्रेम की स्वीकृति से आप बचना क्यों चाहते हैं? क्या उसमें कुछ लज्जा की बात है?

नहीं, काम को पुरुषार्थ मानता हूं और पुरुषार्थ मोक्ष की राह का. काम में लज्जा का तनिक भी प्रश्न होता तो मातृत्व और पितृत्व की संस्था समाज की आदि काल से धुरी बनी न रह सकती थी. मैं पिता बना, इस पर क्या मैं शर्म करूं? संख्या पांच पर परिवार-नियोजन की ओर से आपत्ति चाहे हो, पर पिता शरीरधारी ही हो सकता है. इसलिए शारीरिक तल पर प्रेम उतरे तो उसमें पुरुष होने का अर्थ देखा जा सकता है, अर्थात उसमें तिरस्करणीय कुछ नहीं है, पर उसके बखान की लालसा को मैं रति-स्मृति की संज्ञा दूंगा और वह अनावश्यक होना चाहिए.

आप जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि क्या मानते हैं?

मैं दिगंबर जैन हूं, लेकिन दिगंबर जैनी मुझसे बेहद असंतुष्ट हैं. पर जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नवलेखन : तब और अब

'जब मेरा लिखना शुरू हुआ' इतना तो है ही कि मैं निपट कोरा और नया था. साथ अबोध भी था. उस समय लिखने वाले कम थे. स्पर्धा उतनी नहीं थी, न साहित्यिक गोष्ठियों का रिवाज था. इसलिए अबोधपन मुझे ज्यादा बाधा बनता नहीं लगा और अपने लिखने के संबंध में मैं अपेक्षाकृत निश्चित रह सका था. आज नवोदितों की कठिनाई इस माने में बढ़ गयी है कि साहित्य-चर्चा खूब होती है और तरह-तरह के विचार उसे अनिश्चय में डाले रख सकते हैं. वह अपने लेखन के बारे में लगभग बाध्य है कि सचित रहे, निश्चित हो ही न सके. इस कारण आज के लेखन में परिज्ञान की और कुशलता की हमारे जमाने की अपेक्षा कहीं अधिकता मिलेगी. मैं अगर इतना अधपढ़ रहा कि अपढ़ तक अपने को मान सकूं तो इससे मेरी निश्चितता में कोई अंतर नहीं आया. लेकिन आज अधिकांश लेखक-लेखिकाएं प्रायः शिक्षित हैं. यह उसके पक्ष में जितना हितकर है, मुझे प्रतीत होता है कि अहितकर उससे अधिक सिद्ध हो रहा है.

अब लेखन का खुलापन और अनायासपन कम हो गया है. निपुणता की बारीकी बढ़ गयी है. शिल्प की दृष्टि से हर किसी को मानना पड़ेगा कि नवलेखन पूर्ववर्ती परंपरा से बहुत आगे है, कहीं बढ़िया है. वह नफीस है, सुघड़ है, साहसिक और सूक्ष्म है. लेकिन मुझे डर है कि कथ्य उसका क्या उतना मूल्यवान और ध्येयपरक है? आदर्श तो यथार्थ में तिरोहित हो ही गया है. और इस घटना पर रुष्ट होने का भी कोई कारण नहीं है. अधर में लटका आदर्श अधिकांश बौद्धिक मात्र रहकर जीवन में ग्रंथियां उत्पन्न करता है. उससे छद्म और दंभ पैदा होता है. किंतु ऐसा कुछ तो आवश्यक है ही जिसकी जीवन पर कशिश अनुभव हो और परिणाम में एक उत्कर्षण की अनुभूति मिलती रहे.

साहित्य, जो आज के नवलेखन में प्राप्त हो रहा है, भीतर की परतों को बहुत कुछ खोलकर दिखाता है. तरह-तरह से आपको आगाह करता है और आपकी आंख खोलता है, लेकिन आपको अपने से उठा देने और भीतर उन्नयन जैसा कुछ अहसास देने की क्षमता खो दे रहा है. मूल्य निष्ठा यदि आज बिखर रही है तो उसका भी लाभ हो सकता था, अगर नये मूल्यों की तलाश उसकी जगह लेती. ठीक है कि गतानुगतिक मूल्य अपर्याप्त पड़ते हैं, उनमें निरंतर संशोधन की आवश्यकता होती है, किंतु मात्र उनका विघटन नकार-निषेध का भाव उत्पन्न कर देता है. और ऐसा साहित्य रचनात्मक नहीं, समीक्षात्मक होकर रह जाता है.

नवलेखन में मुझे कुछ बहुत ही मूल्य और महत्त्व की रचनाएं मिली हैं, इसलिए यह नहीं मान लेना चाहिए कि नवलेखन की गठरी में सब माल एक जैसा है, किंतु अधिकांश नकार का स्वर प्रधान है और उसमें जायका भी अधिक माना जाता है.

हां, अब आकर नये लेखक की कठिनाइयां बढ़ गयी हैं. उनकी संख्या ज्यादा है. स्पर्धा-प्रतिस्पर्धा ज्यादा है. बाजार को पाने और पकड़ने की होड़ तीखी है. पर निराशा की आवश्यकता नहीं है. नये-पुराने शब्द में कुछ सार नहीं हैं. लेखक अभी मैं हर लिहाज़ में सर्वथा नया था, किंतु पहली किताब पर 'अकादमी पुरस्कार' की छाप क्या लगी कि उसी कारण उसी क्षण से पुराना बन गया. अर्थात नये-पुराने का समीकरण बढ़िया और घटिया से नहीं किया जाना चाहिए. साहित्य की कसौटी सांप्रतिकता नहीं है. □

■ जनेंद्र कुमार

उन्हें कैसा लगेगा, जब मैं आपसे ... हूं कि दिगंबरता को मैं सबसे ... उपलब्धि मानता हूं. अभागा है वह ... किसी के प्रति नग्न नहीं हो सका ... परम सौभाग्यशाली वह है ... अंतर्बाह्य रूप में जगत्मात्र ... प्रति नग्न अनुभव कर सकता है. न ... भीतर है छिपाने के लिये, न बाहर ... संशय है. लेखक व्यवहार की ... के लिए तनिक आवरण स्वीकार करे ... है तो इस कारण नग्नता एकाएक ... को सह्य नहीं हो पाती, अन्यथा जो ... से और यथाशक्ति तन से दिगंबर ... वही जीवनमुक्त माना जा सकता ...

शतरंज आपका प्रिय खेल ... क्या शतरंज की एकाग्रता ... की एकाग्रता से मिलती ...

नहीं, नहीं मिलती. लिखना मानो ... को काटते-छीलते जाने का ... है. शतरंज में वैसा कोई कष्ट नहीं ...

शतरंज एक बौद्धिक खेल ... क्या इसी कारण आप ... बौद्धिक एवं नीरस बन गये ...

बुद्धि बराबर है रसहीनता के ... समीकरण मेरे लिए नया है.

एक शतरंज के खिलाड़ी ... में क्या आप प्रेमचंद की ... 'शतरंज के खिलाड़ी' ... खेल की आत्मा के ... पाते हैं?

बिल्कुल सही चित्रण है वहां, ... के खेल में सुध-बुध भूल जाने का ...

शतरंज के व्यसन से ... होने पर आप कैसा ... करते हैं?

यास्नाया पोलियाना वाले ताल्स्तॉय ... घर में अब तक मेज पर ज्यों के ... शतरंज के बिछे हुए मोहरे सुरक्षित ... हुए हैं. मार्क्स के बारे में सुना ... कि रात को अधूरी बाजी छोड़ ... सोये तो रात के सपने के ... में अगले सवेरे नयी सूझ लाये ... हारती हुई बाजी को उस चाल से ... ले गये. यानी शतरंज के साथ ... लोगों के नाम जुड़े पाकर इस ... लज्जा से मैं कुछ बच जाता ... विनोबा एक अर्से नियमित शतरंज ... रहे. उनसे मिलना हुआ, तब ...

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ चुके थे. उन्होंने फिर आने को कहा तो मैंने कहा, "क्या आयें, शतरंज तो आप खेलते नहीं." विनोबा बोले, "यह बात है! आ आओ जमेगी शतरंज." यानी आप यकीन मानिये, शौक मजेदार है.

एक लेखक के रूप में क्या आपने इमर्जेंसी में अभिव्यक्ति का संकट अनुभव किया था?

मैंने कोई संकट अनुभव नहीं किया. लेखक की अभिव्यक्ति कानून से कैसे रुक सकती है? हो सकता है कि लिखा हुआ छपे नहीं, तो यह लेखक के आगे नागरिक की बात है. लेखक की अभिव्यक्ति का अधिकार क्या कोई राज्य उसे प्रदान करता है, जो छीन भी ले सकता है? जी नहीं, वह उसमें गर्भित है और लेखक जैनेंद्र को किसी तानाशाह पर बिगड़ने की जरूरत नहीं है, बल्कि लेखक की हैसियत से मेरे मन में अब तक इच्छा है कि मैं उन इंदिरा गांधी को समझ सकूं, जिन्होंने इमरजेंसी लगाकर अपनी सत्ता के निष्कंटक होने की कल्पना की होगी. अगर लिख रहा होता तो उन्हीं को यानी उन्हीं के प्रश्न को केंद्र में रखकर मैंने लिखा होता. पर यह हो इसलिए नहीं सका कि मैं उनके भीतर काम कर रहे अंतर्विरोधों पर सही पकड़ पा नहीं सका.

एक नागरिक के रूप में आपने इमर्जेंसी का विरोध किस प्रकार किया?

दिल्ली में पहली रैली, यानी जयप्रकाश से भी पहले हुई, रैली में तो स्मरण पत्र लेकर आचार्य कृपलानी के साथ भीमसेन सच्चर और मैं ही भूतपूर्व प्रधानमंत्री के पास गये. निर्माण-समिति और संघर्ष समिति दोनों का निर्माण मेरी अध्यक्षता में हुआ था. विनोबा भावे के आचार्य सम्मेलन में जाने से पहले इंदिराजी से मिलकर मैंने उन्हीं के समक्ष कहा था कि सत्ता की कार्यकारी शक्ति को आप सब कुछ न समझें. आवश्यक है कि उसमें एक नैतिक आयाम भी खुले. उन्होंने जानना चाहा कि "क्या मतलब ?" तो मैंने स्पष्ट कहा कि क्या आप समझती हैं कि दमन और दंड की नीति के उत्तर में आपको जनता की श्रद्धा प्राप्त होगी? आचार्य सम्मेलन में मेरा यही रुख रहा कि उसकी सिफारिश इमर्जेंसी उठाने के पक्ष में हो सके, परंतु रैली के जुलूस में लगे नारों तथा विरोध पक्ष के नेताओं का व्यवहार देखकर मुझे लगा कि आंदोलन का रूप गांधी का नहीं है और आचार्य कृपलानी से कहा कि इस प्रकार के संघर्ष की समिति को आप संभालें. निर्माण वाली समिति को चाहे मुझ पर छोड़ दीजिए. लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि लेखक जैनेंद्र इंदिरा गांधी से घोर असहमत रहते हुए भी उनका अडिग प्रशंसक है.

ज्ञानपीठ पुरस्कार को लेकर हिंदी के एक प्रतिष्ठित लेखक ने लिखा कि आपने इस पुरस्कार को प्राप्त करने की चेष्टा की थी. क्या यह सत्य है?

चेष्टा की बात सत्य नहीं है तो इसलिए कि मुझमें उतनी पात्रता नहीं है. पैसा और वह एक लाख जितना मिले तो, मेरे साथ मेरे सारे परिवार वालों को खुशी होगी. पर रोना तो यही है कि चेष्टा जैसी चीज अंदर से निकल पाती ही नहीं है.

अज्ञेय को ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त होने पर आपकी क्या प्रतिक्रिया हुई?

अज्ञेय मेरे बहुत निकट रहे हैं. कुछ देर बाद मुझे लगा कि एक तरह मेरे छोटे भाई के ज़रिये कुछ मेरे पास ही आया है, पुरस्कार.

क्या आपकी दृष्टि में यह पुरस्कार लेखक की सृजनात्मकता एवं रचना-धर्मिता की सामाजिक स्वीकृति है?

प्रधान तो कलात्मक विशेषता की स्वीकृति ही है, पर मैं इधर ठोस व वस्तु को अधिक महत्व देने लगा हूं.

अभिव्यक्ति का अधिकार लेखक में गर्भित है

सुना है आप साहित्य-अकादमी के फेलो निर्वाचित हुए हैं. इसको आप क्या मानते हैं?

मालूम नहीं फेलो होने का मतलब क्या है. यह जरूर सुनता हूं कि सारे भारत-वर्ष से बहुत ही परिमित संख्या है. शायद ग्यारह के आस-पास. उस दृष्टि से इस सम्मान का पात्र बनना मुझे अपने लिए भारी लग रहा है. आगे उसमें कुछ ठोस प्राप्ति भी है या नहीं पता नहीं. पारिवारिक हैसियत से वह अधिक वास्तविक होनी चाहिए. □

अगले अंक में

जैनेंद्रजी की ताजा कथा-रचना

शार्क : जन्म की भूमिका

जो उन्होंने सारिका के लिए विशेष रूप लिखी है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अज विलाप

○ लक्ष्मीनारायण लाल

वह देखो, वह! फुनगी चढ़ा आसमान, इमली के पेड़ पर अजामिल. बाप रे! पता नहीं इसकी लरिकाई कब जायेगी. बाइस-तेइस साल का पट्ठा जवान, मोंह दाढ़ी बढ़ आयी हैं, देखो तनी, बंदर माफिक पेड़ पर चढ़ा है. सुनो, कैसा चिचियाय रहा है...

वक्, चिचियाय नहीं गा रहा है—इमली के लेहुंचा को जवान मोर पकरी पहुंचा. लेव, इमली के पेड़ पर से सारे बंदर भदर-भदर कूदकर भाग गये!

अपने दरवज्जे से लंका मिसराइन चिल्ला कर बोलीं— "अरे अज्जू, ओ अज्जू, दहिजरा कै पूत, कान फूटिगै का! अरे उतरिआव." पर कौन उतरता है. बंदर भगाने गया था अजामिल, लंका मिसराइन ने भेजा था. जिस पेड़ पर अज्जू चढ़ने लगे, क्या मजाल कि कोई बंदर उस पेड़ पर बैठा रह जाय. तीन साल पहले जब बड़की आंधी आयी थी, पांडे जी के बगिया में न जाने कहां से लंगूर ने आकर डेरा जमा रखा था, तब उसे भगाने के लिए पांडे जी ने अजामिल को ही उकसाया था. लंगूर जिस डाल पर टिक कर सोता, अज्जू चुपके से पहुंचकर उसकी पूंछ खींच दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेचारे लंगूर की नींद हराम हो गयी दुम दबाकर भागा.

इमली के पेड़ से नीचे कूदकर अज्जू पूरी तरह सांस भी नहीं ले सका था, कि रामरतन और झिनकू चौधरी दोनों उसकी ओर लपके. रामरतन ने कहा—"ले बेटा दौड़कर बाजार चला जा, अलीदीन दरजी के यहां से मेरे कपड़ ला दे." झिनकू ने कहा—"अरे बेटा अज्जू, उधर से लपककर डाक्टर के यहां चले जाना, ई पुरजा देकर दवाई लेते आना. किसी और के कहने में मत आ जाना." अजामिल की माई ने दूर से कहा, "अरे अज्जू के मुंह में अभी तक दाना पानी नहीं गया है. पूरे गांव भर ने मानो मेरे बेटे को नौकर बना रखा है."

माई बोलती रह गयी. अजामिल किलकारियां मारता हिरन की तरह चौकड़ी भरता हुआ निकल गया. बाजार में अलीदीन के यहां से डाक्टर के यहां पहुंचा. दवाई लेकर जब चलने लगा तो डाक्टराइन ने कहा—"ओ रे, मेरी दो खाटें ढीली पड़ गयी हैं, ज़रा कस तो देना. खाटें खड़ी करते-करते अज्जू को बेतरह भूख लग गयी. गांव लौटा, तो दूर से ही शोर शराबा सुनायी दिया. चौधरी और रामरतन के घर उनके सामान रख जब वह अपने घर की ओर मुड़ा तो गांव के बीचो-बीच ठाकुर के अहाते में चकरघम्म मचा था. अज्जू के पिता पंडित सत्यप्रिय जी लोगों को डांट रहे थे—"अज्जू की सिधाई और भोलेपन का नाजायज़ फायदा उठाते हैं आप लोग. वह मेरा एकलौता बेटा है. पुरोहिती, कथा-वार्ता काज से मुझे अक्सर बाहर आना-जाना होता है. होता है कि नहीं?"

"हां हां, पंडित जी होता क्यों नहीं!"

"फिर, मेरा काम कैसे चले? इधर आ अज्जू!"

अजामिल ने पिता जी के पैर छूकर प्रणाम किया. पिता जी तीन दिन बाद घर लौटे तो बेटे को घर-दरवाजे पर न पाकर इतने नाराज हुए हैं. ठाकुर के दरवाज़े पर पूरे गांव को बुलाकर डांट फटक रहे हैं.

अज्जू बोला—"क्या हुकुम है पिता जी?"

पंडित जी गरजे—"तू सदा दूसरों का हुकुम बजाता रहेगा या अपने विवेक-ज्ञान से भी कुछ करेगा. बोल. बोलता क्यों नहीं?"

"बहुत करारी भूख लगी है पिता जी."

"तो मैं क्या करूं?"

"तुम कहो तो खाना खा आऊंगा."

"जा. खाना खाकर बैलों की सानी पानी कर, अपने दरवज्ज पर रहना, मैं अभी आया."

अजामिल अपने घर गया. अजामिल के पिताजी ने गांव के लोगों को सावधान करते हुए कहा—"फिर अजामिल से कोई अपना काम लेगा, तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा, हां, कान खोलकर सुन लो."

हां, हां, सबने कान खोलकर सुना. यह कोई नई बात तो नहीं. छटे छमासे पंडित सत्यप्रिय को इस बहाने पूरे बनकटी गांव को डांटने फटकारने को मिल जाता है. ब्राह्मण की फटकार, दुवारी गाय की फंफकार. आखिर अजामिल के ही तो पिताजी हैं. अजामिल के नाम पर इतनी डांट फटकार में क्या रखा है. कल भोर में पंडितजी फिर निकल जायेंगे पुरोहिती में, फिर अजामिल भइया पूरे गांव जवार का अज्जू बेटा.

ओरे अज्जू, जरा हेंगा पहुंचा दे मेरे तिनकठिया वाले खेत में. ओरे बचवा, आजा छप्पर उठा दे. जरा कोल्हू हांकना भाई, जरा दिसा जंगल हो आऊं!

शहर चलोगे अज्जू भाई, सनीमा देखेंगे.

नहीं भाई, पिता जी ने कहा है, सनीमा फनीमा से चरित्र भ्रष्ट होता है.

अच्छा, एक गाना गा दो अज्जू भइया!

कौन सा गाना?

अरे वही—बिना मोती के चैना पड़त नाहीं!

लो तुम कहते हो तो गा देता हूं जमुना भाई. गाना पूरा कर अज्जू ने कहा—"कहो तो अब घर जाऊं जमुना भाई!"

सुनो अज्जू!

कहो भाई!

अगर कोई तुमसे कहे कि अज्जू भाई, कुएं में कूद पड़ो, या आग लगा लो अपने कपड़ों में, तो क्या वैसा कर लोगे?

कोई ऐसा मुझे कहेगा क्यों? कल्पना करो.

कोई ऐसा कहे तो? ऐसी कल्पना मैं क्यों करूं?

ठीक कहा अजामिल ने. पूरा गांव जवार अज्जू को प्यार करता है. प्यार ही नहीं, इज्जत करता है. अजामिल जहां जिधर, गांव-सिवान में निकलता है,लोग उसे अपने पास बुलाने लगते हैं. लोग खुद दौड़े हुए उसके पास आ जाते हैं. जिस दिन जो अजामिल को न देखे, उस रात अजामिल से मिले वह रह नहीं सकता.

अज्जू की माई तब अपना सिर पीटती हुई कहती है—बाप रे बाप, हमरे बेटवा के नींद भी हराम, देखो, अब चुपचाप पैर दबाये चले जाव, हां. तनिक आहट हुई नहीं कि अज्जू जाग जायेगा.

अरे माई, अजामिल कोई लड़िका नदान तो है नहीं! हां हां, चलो चलो, बड़े चोंचले न बघारो शिवशंकर. हम सबै कै जानी. रात को कोई काज आन पड़ा है, तब बड़ा परेम चर्राया है अज्जू के लिए. जाव जाव, नाहीं तो कहि दहत है. हां!

चैत रामनवमी अयोध्या के मेले में पैदल जाने को लंका मिसराइन फांड बांधकर खड़ी हो गयी. अस्सी साल की बुढ़िया मिसराइन, बनकटी गांव में घूम घूमकर कहती रहीं—"जिसे चलना हो चलै अजोध्या हमरे साथ. कुल ग्यारह लोग गठरी-मोटरी बांधकर तैयार. तीन मरद, मिसराइन सहित पांच मेहरारू और तीन लड़कियां मिसराइन डंडा पटकती हुई अजामिल के माई के पास पहुंची"

"कहां हैं अज्जु?"

माई ने गुस्से से पूछा—"क्यों?"

"अरे अज्जू हमरे पंचन के साथ अयोध्या मेला चलेगा."

"मेला चलेगा, हाय, हाय! गठरी मोटरी ढोवेगा. यह नहीं होगा, हर्गिज नहीं होगा; तुमसे चला न जायेगा तो अज्जू तुम्हें अपनी पीठ पर ढोवेगा, यह अब नहीं होगा. राह चला न जाय, रजाई के फांड बांधे जिसे जाना हो, आप अपने बूते. नहीं जाने दूंगी लुच्चे लपाडियों के साथ अपने बेटे को."

लंका मिसराइन अब बिगड़ी—"चुप रह बहू बहुत हो गया. अज्जु तुम्हारा बेटा है, बिल्कुल है. तुम जनी हो. मुला हमारा बेटा भी तोहै अज्जू!" "कैसा बेटा? किसी और के बेटे को क्यों नहीं बना लेतीं? भरा पड़ा तो है पूतों से बनकटी गांव. सब स्वार्थी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुंहचोर कामचोर हैं बहू. अज्जू है अकेला बेटा, बीर बहादुर सेवकराम. तुम चाहती हो अज्जू भी वैसे हो जाय, जैसे औरों के कपूत हैं—मतलबी, कनकातुर, मेहरे. चलो अज्जू मेरा आडर है!"

वाह रे तेरा आडर. बैलों को सानी पानी कौन देगा? खेत खलिहान कौन देखेगा? पंडित जी को जवाब कौन देगा?

मैं दे दूंगी जवाब. मेरा बेटा रामकृपाल तब तक यहां का सारा कामकाज संभाल लेगा, समझिउ कि नाहीं!

क्या समझेगा कोई!

माई और मिसराइन के बीच जो महाभारत मचा हुआ था, अज्जू ने हाथ जोड़ कर कहा—"जब इतना कह रही हैं तो जाने दे माई. सब को अयोध्या पहुंचाकर, कहो तो उसी दिन उल्टे पैर लौट आऊंगा."

माई ने तड़पकर कहा—"तू अजोध्या जायेगा तो बिना सरजू में स्नान किये, हनुमान गढ़ी में परसाद चढ़ाये बिना लौट आयेगा रे!"

"जैसी आज्ञा करोगी, वही होगा माई!"

"तू कुछ अपने दिमाग, अपनी सोच समझ से करेगा या सदा दूसरों के ही कहने से चलेगा."

"तू क्या चाहती है माई, बोल मैं वह पूरा करके न दिखा दूं तो मेरा नाम अजामिल नहीं."

"मेरे तो भाग फूट गये, न जाने यह नाम किसने दे दिया?"

अजामिल जब सब को संग लिए अयोध्या तीर्थ यात्रा पर चला, तो गांव-गढ़ी के कुछ लंगड़े लूले भी साथ हो लिए. जब अज्जू भइया साथ हैं तो क्या चिंता?

बनकटी से साहबगंज, साहबगंज से राघवपुर गांव. राघवपुर के तिवारी का परिवार बैलगाड़ी से अयोध्या मेला में जा रहा था. सियाराम तिवारी ने अजामिल को देखते ही पुकारा—"अरे अज्जू बेटा, आजा, आजा. मेरी बैलगाड़ी के जुए पर. हम भी अयोध्या चल रहे हैं. अजामिल ने बढ़कर तिवारी के पांव छुए. बैलगाड़ी पर ओहार पड़ा था. "तिवारी जी, आज्ञा हो तो लंका मिसराइन को बैलगाड़ी में बिठाय दूं. आपन लोग तो पैदल आये हैं, पैदल चलेंगे."

"हां हां, बिठा दें बेटा." पाय लागी मिसराइन! अज्जू ने मिसराइन बूढ़ी को गेंद की तरह उठाकर दम्म से डाल दिया बैलगाड़ी में. मिसराइन ओहार के निकट घिसक गयीं. आगे-आगे तिवारी जी की बैलगाड़ी. दायें-बायें लोग.

लंगड़दीन बोला—"अज्जू भइया, तुम आगे आगे चलो, नहीं तो सारी धूल उड़कर तुम्हारे ऊपर..."

"लेव, आगे-आगे ही सही."

पदारथ बहू बोली—"अरे कोई गाना छेड़ो अज्जू भइया, रास्ता ऐसे थोड़े कटी."

"लेव काकी सुनो!" बनवारी हो.

हमरा कै लरिका नादान.

चलती हुई बैलगाड़ी के भीतर से, जरा-सा ओहार उठाकर तिवारी जी की बड़ी लड़की कस्तूरी ने देखा. हाय यह कौन गा रहा है. पट्ठा कितनी मस्ती से गा रहा है.! ई कौन है?

अरे, यही तो अजामिल है आपन. लाखों में एक. हां, चरित्र

केशवर्धिनी

आपके बालों के तेल में अतिरिक्त गुणों का मेल बढ़ाए—प्रतिदिन आपके बाल अधिक स्वस्थ, अधिक लंबे बनाए.

बालों के लिए दक्षिण भारत का पारम्परिक सौंदर्य रहस्य......केशवर्धिनी, बालों के किसी भी 'प्राकृतिक' तेल (जैसे नारियल) के साथ इसे मिलाइए और बालों की जड़ों में रोज़ मालिश कीजिए. फिर देख लीजिए बालों का गिरना बंद और बालों का स्वस्थ, सुंदर होना शुरू. केशवर्धिनी का व्यवहार अभी शुरू कर दीजिए.

केशवर्धिनी प्रॉडक्ट्स,
आर्काट रोड, मद्रास-६०० ०८७.

OBM.3837 HN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मवान, दयावान, सेवावान और इतना सुंदर सजीला, भगवान भगवती माई, ठाकुर बाबा इसे अच्छे रखें, हां. . . लंका मिसराइन की आंखों से भर्र-भर्र आंसू झरने लगे. जैसे अज्जू उन्हीं की कोख से जन्मा हो. मिसराइन को जितने सारे अच्छे-अच्छे शब्द याद थे, सब जड़ दिये अजामिल की तारीफ में.

अच्छा.

हां तिवारिन.

तिवराइन ने अपनी जवान बेटी को डांटा—"बंद कर ओहार कस्तूरी, क्या झांक रही है. . . हां तो मिसराइन . . ."

हां, तो मैं का कह रही थी?

अजामिल के बारे में. . . . !

मिसराइन ने बैलगाड़ी के फट्टे पर डंडा मारकर कहा—"अरे ओ, ओरे अज. . . . !" अज्जू के लिए मिसराइन दादी को जब जरूरत से ज्यादा प्यार दुलार उमड़ता है, तब उसे अज नाम से पुकारती हैं.

"हां, दादी!" तब अज भी दादी कहता है.

"अरे का पें पों गा रहा है. अरे कोई भजन गा."

"लेव, भजन, जननी विनुराम, अब ना अवध मा रहिवे."

"ई तो बहुत पुराना भजन है रे."

तो लेव फिल्मी भजन सुनो—"माई जसोदा से पूछें नंदलाला, राधा क्यों गोरी मैं क्यों काला!"

बैलगाड़ी में से एक खिलखिलाती हुई हंसी बाहर उफन आयी.

तिवराइन ने डांटा—चुप रह कस्तूरी.

लंका मिसराइन मुदित स्वरों में बोलीं—अरे यही तो हंसने की उमर है.

. . . बड़ी सुंदर बिटिया है तिवराइन. कहीं ब्याह-शादी की चिंता कर रही हो या हाथ पै हाथ धरे बैठी हो.

तिवारी जी कब से दौड़धूप कर रहे हैं. बात ई है कि. . .

तिवराइन ने बेटी की आंख बचाकर मिसराइन के कान में कहा—बात ई है कि बड़ी मुंहचढ़ी है अपने बाप की. बाप से मुंहफट कह दिया है—शादी मेरी पसंद की होगी बाबू. जब देखकर मैं कहूंगी तभी!"

मिसराइन खिलखिलाकर हंस पड़ी. तिवराइन भी हंसने लगी.

दिन डूब चुका था.

तिवारी ने आम की बगिया में कुंए के पास बैलगाड़ी रोकते हुए कहा—"बस, आज यहीं डेरा पड़ेगा. सुबह लड़ाके मुरुकुआ के साथ कूच करेंगे, दोपहर होते-होते अयोध्या जी. बोलो राजा बर रामचंद्र की जै! बोलो अयोध्यानाथ की जै! बोलो राजा रामचंद्र की जै. पवनसुत हनुमान की जै.

जितने लोग थे साथ में, सब ने एक एक जैकार की, बाकी सब एकस्वर में हाथ उठा उठाकर जै कहते रहे.

आधी रात के समय, जब सारे लोग बेसुध सो रहे थे, लंका मिसराइन ने बहुत धीरे से अजामिल को जगाया!

ओ! ओरे अज!

हैं रे दादी!

"जा धीरे से आंख धोआ!" "लो आंख धोकर आ गया."

"अयोध्या धाम की ओर मुंह करके बैठ." "लो बैठ गया."

एक बात कहूं रे!

कहो न!

मेरी बात मानेगा न?

अरे आज्ञा करके देख लो.

तो सुन—तिवारी जी की बिटिया कस्तूरी है न?

हां, है!

देखा है?

देखा नहीं, सुना है.

भक्! वह देख, वह सोयी पड़ी है. जा, देख ले ना. जा!

ना, ना, मुझे लाज लागे दादी!

मैं कहती हूं जाकर देख आ, नहीं तो मारूं वह डंडा!

अच्छा अच्छा, देख लेता हूं.

अज्जू सोती हुई कस्तूरी को देख आया.

देख लिया ? कैसी लगी?

बक!

बिना दांत के मिसराइन की बतीसी खिली रही. चारों ओर रात का सन्नाटा छाया हुआ था. कहीं दूर से तीर्थ यात्रियों का गायन सुनायी दे रहा था. मिसराइन ने अज्जू के माथे पर दायीं हथेली रखकर कहा—"अज्जू, मेरी एक बात पूरी कर?"

"जरूर करूंगा दादी!"

"तो सुन, कस्तूरी से प्रेम कर!"

अज ने बिल्कुल उसी शुद्ध सेवा और भक्ति भाव से पूछा—"प्रेम कैसे किया जाता है दादी?" "अरे, बताऊंगी न!"

तो कर दूंगा दादी, इत्मिनान रखो! कहो तो अब सो जाऊं दादी, भूलना नहीं.

"राम जाने नहीं भूलूंगा. वचन पूरा करूंगा."

अजामिल सो गया, पर लंका मिसराइन बैठी-बैठी तुलसी-माला घुमाती, सियाराम सियाराम जपने लगी.

▣

अभी डेढ़ घंटा रात बाकी है. लोग जगकर यात्रा की तैयारी में लगें, इससे पहले मिसराइन ने कस्तूरी और तिवराइन को जगाया. तीनों जनी कुएं पर गयीं. कस्तूरी ने पानी भरने के लिए गगरा कुएं में डाला. भरा गगरा खींचने लगी कि आधे कुएं में उबहन टूट गयी और धड़ाम से गगरा कुएं में गिरा.

हाय दइया, बाबू जागेंगे तो क्या कहेंगे! कस्तूरी का दायां हाथ दबा दिया मिसराइन ने. तिवराइन अलग परेशान. "अब का होगा! कस्तूरी के बाबू जागेंगे तो मुझे डाटेंगे कि इसे क्यों गगरा भरने दिया अनजान कूएं में रात के वक्त. हाय दइया मैं क्या करूं?"

मिसराइन ने हाथ दबाकर कहा, "बेटी मेरी बात मान. जा चुपके से उसी अजामिल को जगा, वह अभी कूएं में से गागरा निकाल देगा और कोई उपाय नहीं, जल्दी कर जल्दी! जल्दी, हां."

घबड़ायी हुई कस्तूरी ने अजामिल को किसी तरह जगा तो दिया, पर लाज के मारे कुछ न कह सकी. कुएं की तरफ किसी तरह इशारा भर किया. चुपचाप आगे-आगे कस्तूरी, पीछे-पीछे गाय के जवान बछवा की तरह अजामिल. पलक भांजते ही अज्जू

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोधकथा

परख

■ इदरीस शाह

एक दरवेश के पास कोई आदमी आया और उसने उसे एक-एक कपड़ा दिया.
उसी समय दरवेश ने अपनी झोली में हाथ डाला और एक मछली निकाल कर उस आदमी को दी.
दरवेश के पास बैठे उसके बहुत-से शिष्यों ने यह देखा तो उस आदमी और अपने गुरु के बीच हुए उस आदान-प्रदान का रहस्य जानने के लिए आपस में बहस करने लगे.
कई दिन बीत गये तो दरवेश ने उनसे पूछा कि वे किस नतीजे पर पहुंचे हैं. जब सभी शिष्य अपनी-अपनी बात बता चुके तो दरवेश ने कहा——
"उस आदान-प्रदान द्वारा मैं देखना चाहता था कि तुम में से इतना अक्लमंद कौन है जो यह समझ सके कि उस आदान-प्रदान का कोई मतलब नहीं था." □

कुएं के पानी में डूबकर नीचे गगरा टटोलने लगा. ऊपर कुएं की जगत पर कस्तूरी का जी धक-धक करने लगा. हाय! अज गगरा हाथ में लिए पानी के ऊपर आ गया. यात्रा चली.

लंका दादी ने कहा, "सुन रे अज, अब मौका देखकर कस्तूरी से झटाक से कह दे कि मुझे तुझसे प्रेम हो गया है, हमारा विवाह हो जाये!"

अयोध्या में बाबा राखाल दास की छावनी पर यात्रा पूरी हो गयी. गाड़ी रुकते ही कस्तूरी छावनी के मंदिर की ओर दौड़ी. दादी ने इशारा किया. अज्जू उसके पीछे-पीछे दौड़ा. मंदिर के चबूतरे पर अचानक कस्तूरी का दायां हाथ पकड़कर अज ने अजब मंत्रमुग्ध स्वरों में कहा, "प्यार हो गया मुझे तुमसे. अब बस ब्याह हो जाये!"

"बक!"

दांतों तले आंचल का कोना दबाये कस्तूरी दौड़ी अपनी मां के पास चली आयी. अज चुपचाप मंदिर के चबूतरे पर मूर्तिवत् खड़ा रहा.

बनकटी गांव में लंका मिसराइन ने बात फैला दी कि राघवपुर के तिवारी की इकलौती बेटी और पंडित जी के इकलौते बेटे आजमिल की शादी पक्की हो गयी है. यह बात जैसे ही पंडित सत्यप्रिय के कानों में पड़ी, उन्होंने अजमिल को पुकारा, "अज बेटे!"

"हां, पिताजी."

"यह राघवपुर के तिवारी की बेटी के साथ तुम्हा[illegible] की बात किसने की?"

"मैंने खुद पिताजी!"

"किसके कहने पर?"

"लंका दादी..."

पंडित सत्यप्रिय मारे आवेश और क्रोध के अज पर [illegible] अज्जू ने जरा भी अपना बीच-बचाव नहीं किया. अज्जू [illegible] छाती पीटने लगी. अज्जू को जमीन पर गिराकर पंडित [illegible] पागलों की तरह उसे पीटने लगे. पहले हाथ पैर [illegible] खड़ाऊं-जूते से. अज्जू की चीख सुनकर सारा गांव वहां [illegible] पर किसी की हिम्मत नहीं कि पंडित जी का कोई [illegible] अचानक उस भीड़ को चीरती हुई लंका मिसराइन [illegible] और तड़पते-छटपटाते हुए अजू के ऊपर बिछ गयी.

"ले मार और मार!"

"हट जाओ वरना बहुत बुरा होगा!"

मिसराइन ने रोते हुए कहा, "अब इससे बुरा [illegible] होगा? ऐसे निर्दोष, भोले जवान बेटे को कसाई की [illegible] बोल, क्यों मारा तूने? क्या कसूर किया इसने? [illegible] नहीं? बता क्या है अज की गलती?"

पंडित सत्यप्रिय की आंखों से चुपचाप आंसु [illegible] भरे कंठ से बोले, "यह खुद क्यों नहीं मुझसे सवाल [illegible] मैंने इसे क्यों मारा? यह हर काम दूसरों के कहने से ही [illegible] है? यह स्वयं अपने कर्म का कर्ता कब होगा?"

पंडित सत्यप्रिय ने रोते हुए अज को पूरी ताकत [illegible] हुए कहा, "जो अपने कर्मों का कर्ता नहीं, वह उसका [illegible] नहीं, जो भोक्ता नहीं उसे कभी मुक्ति नहीं मिलती [illegible]

अज चुपचाप बैठा जमीन में नज़र गड़ाये था. [illegible] दृष्टि से न जाने क्या देखने लगा था, पहली बार [illegible] जी, लंका दादी और पूरा गांव रो रहा था. अज ने [illegible] से विलाप करते हुए पिता की ओर देखा. पास [illegible] पैर छूकर कहा, "रोओ नहीं पिताजी, आज मैं खुद [illegible] राघवपुर के तिवारी के पास. . .मेरे साथ कोई नहीं [illegible]

लंका दादी के मुंह से निकला, "मुझे भी साथ नहीं [illegible]

"नहीं!"

"अब तू किसी के कहने से कुछ नहीं करेगा?"

"नहीं, जो मैं चाहूंगा, वही करूंगा!"

अज की माई ने कहा, "तो मेरी सुन, तिवारी [illegible] की बदनामी है, मैं उससे तेरी शादी नहीं होने दूंगी!"

"अब मेरी शादी उसी से होगी."

अज ने जाकर कुएं पर खूब स्नान किया. अपनी [illegible] कपड़े पहने. अपने गांव से राघवपुर के लिए चला.

पिताजी के मुंह से निकला, "बेटे, कल सुबह [illegible]

अज अपने सिर पर हल्दी रंगी पगड़ी बांधता हु[illegible]

उसके पीछे अज के पिताजी पंडित सत्यप्रिय [illegible] थे और उनके पीछे लंका मिसराइन.

● 8/17, ईस्ट पटेल नगर, नयी दिल्ली-11000[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथाएं

अपना हाथ

▣ पृथ्वीराज अरोड़ा

एक सजी-धजी कार खड़ी थी. भीड़ भरे बाजार में आने-जाने वालों को इसकी वजह से असुविधा हो रही थी मगर कार के आस पास खड़े लोग इस तरफ से निश्चिंत बारी-बारी माईक पर चिल्ला रहे थे और लाउडस्पीकर उनकी आवाज़ दूर-दूर तक फेंक रहा था. . . . "रातों-रात लखपति बनिये. . .पैसा ही पैसे को खींचता है. . . रुपया फेंको और तमाशा देखो. . . एक रुपये में एक लाख की आमदनी. . . घर बनाओ. . . व्यापार करो. . . कार, फ्रिज, टेलीविजन! किस्मत आजमाइये. . . ट्राई यूअर लक्क. . . !"

वह आवाज़ में संजोये सपनों में मुग्ध होकर कार की तरफ बढ़ने लगा.

"अगर मेरी लाटरी खुल जाये तो?. . . तो?"उसके कदमों में तेजी आ गयी.

लाउडस्पीकर के हौसले बुलंद थे, "गरीबी लानत है इसे दूर कीजिए. . . आप जानते ही होंगे. . . इस दुनिया के तीन नाम, परसु, परसा परसराम. . . जिंदगी के सभी सुख सिर्फ एक रुपये में. . . चाय पीयेंगे, पेशाब कर देंगे. . . पान खाकर थूक देंगे. . . पर यह मौका. . .नोट मिलेंगे, नोट. . . किसी के आगे हाथ पसारने की जरूरत नहीं. . . . !" कार के नज़दीक पहुंचते-पहुंचते उसके सामने असंख्य हाथ उभर आये, जिनमें लाटरी के टिकट लहरा रहे थे. . . पत्थर कूटते मज़दूरों के हाथ, हल जोतते किसानों के हाथ, पसीने से तरबतर रिक्शा वालों के हाथ, टाईपराइटर कूटते मरियल-से बाबुओं के हाथ! फिर सब मिलकर एक ही हाथ में तबदील हो गये. यह उसका अपना हाथ था. . .अपना हाथ, जगन्नाथ!, उसे लगा सुनहरे भविष्य का सपना दिखाकर उसे लुंज करने देने की खतरनाक साज़िश में फंसाया जा रहा है.

वह ठिठक गया. कुछ क्षण कार के बोनट पर फैली लाटरी टिकटों को हसरत भरी निगाह से देखता तेजी से पलटकर वह वापस कारखाने की ओर चल दिया. □

अ-यात्रा

▣ राजकुमार गौतम

छुट्टी आने पर पत्नी ने जब 'बात' बतायी तो वह पथरा गया. भला यह भी कोई बात है कि एक तो शादी को अभी सिर्फ दो ही साल हुए हैं और इतनी सतर्कता रखने के बावजूद पत्नी बियाने लग जाये . . दूसरे मुद्राराक्षस की बात! घर के लालच में पत्नी का यहां का और अपना वहां का खर्चा ही पता नहीं किस तरह रो-धोकर चलता है! महीने की आठ तारीख़ को तीन सौ रुपल्ली को जब वह थूक लगाकर गिनता है तो तभी घर का किराया, पत्नी का खर्चा, किरानी का बिल, दूधिये का हिसाब . . एक-एक करके उसकी थूक लगी उंगली को जकड़ते जाते हैं और तनख्वाह गिनने से पहले ही उसकी हथेलियों से फिसल जाती है! . . कोई बच्चा भी हो जाये तो, . .कैसे चलेगा?

उसने पत्नी को खूब डपटा! एकाध रुपल्ली की तभी ही दवा-गोली सटक लेती तो तभी ही राड़ा निपट जाता. . .! फिर चुप हो गया. हो सकता है वह मां बनना चाह रही हो . . ! वह स्वयं भी तो बाप बना चाह रहा है . . अगर . . उसने आगे सोचा तो. . .तो . . .? थूक लगी उंगली को इस बार एक बच्चे ने जकड़ लिया.

अच्छा ऐसा करें . . वैसा करें . . होने दें . . रहने दें . . होना चाहिए . . नहीं होना चाहिए . . . अच्छा . . फिर . . हां . . नहीं . . नहीं . . हां . . नहीं! ! ! फैसला हो गया कि 'सफाई' करा ही दी जानी चाहिए.

पांच सौ लगेंगे . . टाइम ज्यादा हो गया है . . ! सात सौ के करीब लग जायेंगे . . रिस्क ज्यादा है . . ! लेडी डॉक्टर्स के शब्द उसकी थूक लगी उंगली की जगह ज़ुबान को ही जकड़ते गये.

वह हारे हुए जुआरी की तरह थक गया और नौकरी पर लौटने से पहले पत्नी को सख्ताई से कह गया कि इस बृहस्पतिवार को अस्पताल में जाकर पर्ची ज़रूर बनवा ले . . .इस से कम खर्च! में तो बच्चा ही मिल जायेगा! □

विधवा हवेली

▣ मोहर सिंह यादव

पीरिया लघु कृषक था. उसके पास दस बीघे ज़मीन थी. अपने गांव के एक संपन्न किसान की नयी हवेली देखकर पीरिया का मन मचल उठा. उसने मन ही मन दृढ़ संकल्प किया कि वह भी एक-एक पाई जोड़कर छोटी-सी एक सुंदर हवेली बनायेगा.

कई साल बीत गये. पीरिया व उसके परिवार ने खूब मेहनत की. एकेक पाई बचाकर उन्होंने कुछ धन एकत्रित किया. इस दौरान उन्होंने ढकने लायक कपड़ा नहीं पहना और भर पेट खाना नहीं खाया.

पीरिया ने हवेली बनवाने का काम शुरू किया. तीन कमरे, एक रसोई, एक तिबारी और एक चौबारा—पीरिया की हवेली बन गयी. वह फूला नहीं समा रहा था.

एक दिन अपनी हवेली के गोखे पर बैठा वह हुक्का पी रहा था. सामने से बाहर गांव का एक राहगीर आया और पीरिया की छोटी-सी सुंदर हवेली को देखकर बोला,"यह हवेली सधवा है या विधवा?"

पीरिया सकते में पड़ गया. हवेली और सधवा-विधवा! उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया. वह शरमाकर बोला, "भाई, मैं समझा नहीं, आपका मतलब. हवेली विधवा या सधवा कैसे होती है?"

नवागंतुक बोला, "तुम्हारे पास ज़मीन है?"

"हां, है दस बीघे का एक खेत."

"उस खेत में कुआं है?"

"नहीं. पीरिया बोला.

"तो तुम्हारी हवेली विधवा है." नवागंतुक ने तर्क दिया, "किसान के खेत में यदि सिंचाई का प्रबंध नहीं है, तो उसकी हवेली में अच्छी पैदावार का अनाज नहीं आयेगा और इस प्रकार खाली पड़ी हवेली विधवा ही कहलायेगी."

पीरिया को अपनी गलती का अहसास उसी क्षण हो गया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओल्ड सेक्रेटेरियट की उस इमारत पर धूप की चिटकन गहरी और शोख हो गयी. गुलमोहरों का लाल रंग उसकी छेड़खानी से दूना लाल हो धधकने लगा.

आशीष ने पसीने से चिपचिपाती पेशानी पोंछी और ब्रीफ़-केस से अर्थ-शास्त्र के प्रश्नोत्तरों की पुस्तक निकाल उसके पन्नों को आंखों से खुरचने लगा. मार्शल अर्थ-शास्त्र की परिभाषा करता हुआ कहता है ....

"क्यों भाई, तुम्हारा क्या ख़्याल है? अपन लंच के समय तक निबट जायेंगे?"

"कह नहीं सकता. मुश्किल ही है. सौ कैंडीडेटस का इंटरव्यू है, मेरा नंबर तो पचासवां है."

"आपसे पीछे तो मेरा नंबर है, साठ पर है. लगता है शाम ही हो जायेगी, मेरे लिए तो शहर ही नया है. वेटिंग रूम से सीधा दस बजे यहां पहुंचा हूं. पूरे बारह तक बैठकर तो सर्टिफिकेट चेक-अप हुए हैं. देख रहे हैं न वो सिर के ऊपर टंगा पंखा? बिगड़ गया है . . . गरमी से नहा रहा हूं."

"चलिये, थोड़ा टहल लें . . . बारामदे में अच्छी हवा है न हो तो पास से कुछ खा-पी लें."

"यहां आस-पास चने-फुटाने भी नहीं मिलते... मरा-मरा-सा चाय का ठेला उधर गेट पर खड़ा है. एक पोंछता लड़का चाय बना रहा है. चाय मैं पीता नहीं ... नहीं पीता कि आदत हो गयी तो बेकारी में रोज़ का खर्चा कौन करेगा!"

"तो चलिये, जल्दी से शहर जाकर कुछ खा-पी अभी तो पच्चीसवां ही गया है. आशीष ने उत्साह दिख

"रहने दो भाई, कहीं इस बीच अपना नंबर आ और कुछ पल वह रुक कर फुसफुसाया, "शहर जाने का दो रुपये जाने के. दो रुपये आने के... है न नो वेस्टेज!" वह गंभीर हो गया.

"तो सबसे बढ़िया है कि हम ठंडा पानी पीकर मस्त आशीष हंसने लगा.

"प्यारे, वह भी नहीं है. ऊपर से नीचे तक हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वह वापस पढ़ने की मुद्रा में लौट आया.

"क्या पढ़ रहे हैं इतनी सीरियसली. मैंने तो एक ही पुस्तक देखी है . . . हम कोई व्याख्याता तो हैं नहीं जो विषय पर पूछेंगे. एम.ए. पास किये चार वर्ष हो गये . . . हम तो 'डिपार्टमेंटल' हैं, इसलिए विभागीय अनुभव के ही प्रश्न पूछने चाहिये."

"अपने एक डायरेक्टर ने नया-नया एम.ए. पास किया है. सो वह डटकर अर्थशास्त्र की खाल उधेड़ रहे हैं. वैसे तुम भी इतना तो समझते ही हो कि इंटरव्यू तो एकमात्र औपचारिकता है. अपने-अपने आदमियों की लिस्ट तो पहले ही तैयार होगी."

आशीष चौंका. उसका उत्साहित चेहरा बुझ गया परंतु वह जोर देता बोला, "लेकिन पोस्ट तो अस्सी हैं, आखिर इतना अंधेर तो नहीं होगा, कुछ तो अनुभवी व योग्य व्यक्तियों को चांस देंगे ही."

"नाटक है नाटक. यदि योग्यता और अनुभव की ही कीमत होती तो आज इतना पढ़-लिखकर मैं या तुम इतने संत्रस्त व

ज़िंदा आदमी

कृष्णा अग्निहोत्री

टूटे न होते. दे लो इंटरव्यू, पर पढ़ने से ज़्यादा सोर्स पर जुट जाओ." एक खाली-खाली-सा ठहाका वहां गूंज उठा.

सच . . . अब आशीष कितना पढ़ेगा? और कब तक पढ़ता जायेगा. क्या इस पढ़ाई का उसके जीवन में कोई अंत है?

पहला एम. ए. पचपन प्रतिशत में!

दूसरा एम. ए. अट्ठावन प्रतिशत में!

लॉ फर्स्ट क्लास!

पिताजी उसके समय तक रिटायर्ड हो गये. किसी टेकनिकल लाइन में नहीं भेज सके . . . भेजते भी कैसे? मां बहुत बीमार रहती हैं, उन्हें दमा है. कहने को वे तीन भाई हैं, परंतु आशीष को भाई का प्यार पाने का अवसर ही नहीं मिला. बड़े भाई इंजीनियर हैं, परंतु कनाडा में हैं. पिताजी बहुत गर्व से कहते हैं कि मेरा बेटा इतनी बड़ी फॉरेन फर्म में है. बड़े भैया का अस्तित्व यदा-कदा भेजे गये किसी पार्सल से ही पता लगता है.

दूसरा भाई व्यापारी है. उसने पिताजी की बची-खुची पूंजी समाप्त कर दी है. और माफी मांग ली कि घाटा हो गया.

रहा आशीष . . . किसी तरह भाग-दौड़ कर पढ़ता रहा और माता-पिता के ही कारण उसी शहर में सेल्स टैक्स इंस्पैक्टर हो गया है.

पिताजी ने शहर से बहुत दूर छोटा-सा घर बनाया है . . . घर से ऑफिस . . . ऑफिस से बाजार साइकिल भगाते-भगाते आशीष की पीठ लकड़ी हो दर्द से चरमराने लगती है, परंतु उसके नसीब में चैन नहीं. कभी मेहमान . . . तो कभी स्टेशन!

थकावट शरीर के साथ घुल गयी है, इसीलिए आशीष इकहरी हड्डियों वाला नवयुवक है . . . मांस तो पसीने से गलबढ़ ही नहीं पाता. आशीष की नाक लंबी, आंखें कजरारी हैं जिनका पैनापन घनी पलकों से झांकता है.

उसके लकलके व्यक्तित्व को बालों के घने गुच्छे और भी अधिक रसिक बना देते हैं, परंतु स्वरा ने सदा एक खास मुद्दे पर उसकी अवहेलना की है इसलिए आशीष अपनी आंखों से ही स्वरा को प्यार कर दुलरा लेता है . . . इसके आगे उसने कहीं भी कोई 'इन्वालमेंट' की बात नहीं सोची.

वे दोनों साथ उठते-बैठते बात करते नहीं अघाते. एक दिन भी आशीष यदि शाम छः तक स्वरा के घर नहीं पहुंचता तो वह खीजती हुई मीठे उलाहनें बिखेर देती है, "हां-हां, तुम्हें भला फुरसत कहां मिलेगी! सारे तुम्हारे काम-काज जरूरी हैं. बस यहां आना ही एक फालतू काम है न, इसीलिए देर करते हो." इस पर भी आशीष चुप रह स्वरा के उन कामों में हाथ बंटाने लगता है जो कलात्मक और प्यारे हैं.

स्वरा कितना भी गुस्से का अभिनय करे परंतु आशीष की प्रत्येक जरूरत की उसे चिंता है. नाश्ते में बहुधा आशीष के पसंद की तली मछली और अंडे के ब्रेड-रोल बनते हैं. और हर माह आशीष के लिए सुंदर शर्ट सिल जाता है. आशीष भी किसी न किसी बहाने स्वरा की पसंद के रिकार्ड ला स्टीरियों पर बजाता है. मंत्रमुग्ध हो उसमें डूबने के बाद वह अपनी बड़ी-बड़ी गुलाब-सी आंखें हिलाने लगती है, "यह क्या बेहूदगी है भला, बिना पूछे तुम्हें इतना खर्च करने को किसने कहा है?"

"नाराज क्यों होती हो? रिकार्ड तो मैं बजाने को ही लाया हूं, वापस हो जायेगा." परंतु रिकार्ड कभी वापस नहीं होता.

एक समय का भोजन आशीष स्वरा के घर ही खाता है. एक को साथ खाना अच्छा लगता है, दूसरे को खिलाना अच्छा लगता है. यह सिलसिला टूट नहीं सकता.

पड़ोसियों की अश्लील आलोचना का सख्ती से सामना करके भी स्वरा अपने ममता भरे स्वागत को नहीं तोड़ सकी है. उसकी बड़ी आंखें फैल जाती हैं, "क्यों आशीष, बेवकूफों के कमेंट्स से क्या हम अपना निर्दोष सुख छोड़ देंगे?"

"बिलकुल ठीक है. मैं कोई जुआ खेलता हूं. शराब पीता हूं. खाना ही तो खाता हूं. मेरे बॉस मुझे इसलिए तंग करते हैं कि उन्हें यह दुख है कि वे यहीं तुम्हारे हाथ का बना भोजन क्यों नहीं खा पाते."

आशीष का दोस्त शर्मा उसे बहुधा छेड़ता है, "क्या यार आशीष, तुझसे तो दो साल में एक लड़की भी नहीं अपनायी गयी, गेलू जैसे चक्कर ही लगाते रहते हो."

"तुम अच्छी तरह जानते हो शर्मा कि स्वरा ऐसी-वैसी लड़की नहीं है . . . मैं उसके पीछे कुछ भी सुनना पसंद नहीं करता हूं." आशीष एकदम तन जाता है.

"बिगड़ो मत मेरे यार, जानता हूं स्वरा बहुत गंभीर, बढ़िया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओल्ड सेक्रेटेरियट की उस इमारत पर धूप की चिटकन गहरी और शोख हो गयी. गुलमोहरों का लाल रंग उसकी छेड़खानी से दूना लाल हो धधकने लगा.

आशीष ने पसीने से चिपचिपाती पेशानी पोंछी और ब्रीफ-केस से अर्थ-शास्त्र के प्रश्नोत्तरों की पुस्तक निकाल उसके पन्नों को आंखों से खुरचने लगा. मार्शल अर्थ-शास्त्र की परिभाषा करता हुआ कहता है . . . .

"क्यों भाई, तुम्हारा क्या ख़्याल है? अपन लंच के समय तक निबट जायेंगे?"

"कह नहीं सकता. मुश्किल ही है. सौ कैंडीडेटस का इंटरव्यू है, मेरा नंबर तो पचासवां है."

"आपसे पीछे तो मेरा नंबर है, साठ पर है. लगता है शाम ही हो जायेगी, मेरे लिए तो शहर ही नया है. वेटिंग रूम से सीधा दस बजे यहां पहुंचा हूं. पूरे बारह तक बैठकर तो सर्टिफिकेट चेक-अप हुए हैं. देख रहे हैं न वो सिर के ऊपर टंगा पंखा? बिगड़ गया है . . . गरमी से नहा रहा हूं."

"चलिये, थोड़ा टहल लें . . . बारामदे में अच्छी हवा है. . . न हो तो पास से कुछ खा-पी लें."

"यहां आस-पास चने-फुटाने भी नहीं मिलते . . . ए[k] मरा-मरा-सा चाय का ठेला उधर गेट पर खड़ा है. एक ना[k] पोंछता लड़का चाय बना रहा है. चाय मैं पीता नहीं . . . इसलि[ए] नहीं पीता कि आदत हो गयी तो बेकारी में रोज़ का खर्चा बर्दा[श्त] कौन करेगा!"

"तो चलिये, जल्दी से शहर जाकर कुछ खा-पी आते हैं अभी तो पच्चीसवां ही गया है. आशीष ने उत्साह दिखलाया.

"रहने दो भाई, कहीं इस बीच अपना नंबर आ गया तो." और कुछ पल वह रुक कर फुसफुसाया, "शहर जाने का अर्थ है दो रुपये जाने के. दो रुपये आने के . . . है न नो वेस्टेज!" और वह गंभीर हो गया.

"तो सबसे बढ़िया है कि हम ठंडा पानी पीकर मस्त रहें" आशीष हंसने लगा.

"प्यारे, वह भी नहीं है. ऊपर से नीचे तक हो आया हूं"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वह वापस पढ़ने की मुद्रा में लौट आया.

"क्या पढ़ रहे हैं इतनी सीरियसली. मैंने तो एक ही पुस्तक पढ़ी है... हम कोई व्याख्याता तो हैं नहीं जो विषय पर पूछेंगे. एम.ए. पास किये चार वर्ष हो गये ... हम तो 'डिपार्टमेंटल' हैं इसलिए विभागीय अनुभव के ही प्रश्न पूछने चाहिये."

"अपने एक डायरेक्टर ने नया-नया एम.ए. पास किया है. तो वह डटकर अर्थशास्त्र की खाल उधेड़ रहे हैं. वैसे तुम भी इतना तो समझते ही हो कि इंटरव्यू तो एकमात्र औपचारिकता है अपने-अपने आदमियों की लिस्ट तो पहले ही तैयार होगी."

आशीष चौंका. उसका उत्साहित चेहरा बुझ गया परंतु वह ज़ोर देता बोला, "लेकिन पोस्ट तो अस्सी हैं, आखिर इतना अंधेर तो नहीं होगा, कुछ तो अनुभवी व योग्य व्यक्तियों को स्थान देंगे ही."

"नाटक है नाटक. यदि योग्यता और अनुभव की ही कीमत होती तो आज इतना पढ़-लिखकर मैं या तुम इतने संत्रस्त व

ज़िंदा आदमी

■ कृष्णा अग्निहोत्री

टूटे न होते. दे लो इंटरव्यू, पर पढ़ने से ज़्यादा सोर्स पर जुट जाओ." एक खाली-खाली-सा ठहाका वहां गूंज उठा.

सच ... अब आशीष कितना पढ़ेगा? और कब तक पढ़ता जायेगा. क्या इस पढ़ाई का उसके जीवन में कोई अंत है?

पहला एम. ए. पचपन प्रतिशत में!

दूसरा एम. ए. अट्ठावन प्रतिशत में!

लॉ फर्स्ट क्लास!

पिताजी उसके समय तक रिटायर्ड हो गये. किसी टेकनिकल लाइन में नहीं भेज सके ... भेजते भी कैसे? मां बहुत बीमार रहती हैं, उन्हें दमा है. कहने को वे तीन भाई हैं, परंतु आशीष को भाई का प्यार पाने का अवसर ही नहीं मिला. बड़े भाई इंजीनियर हैं, परंतु कनाडा में हैं. पिताजी बहुत गर्व से कहते हैं कि मेरा बेटा इतनी बड़ी फॉरेन फर्म में है. बड़े भैया का अस्तित्व यदा-कदा भेजे गये किसी पार्सल से ही पता लगता है.

दूसरा भाई व्यापारी है. उसने पिताजी की बची-खुची पूंजी समाप्त कर दी है. और माफी मांग ली कि घाटा हो गया.

रहा आशीष ... किसी तरह भाग-दौड़ कर पढ़ता रहा और माता-पिता के ही कारण उसी शहर में सेल्स टैक्स इंस्पैक्टर हो गया है.

पिताजी ने शहर से बहुत दूर छोटा-सा घर बनाया है ... घर से ऑफिस ... ऑफिस से बाजार साइकिल भगाते-भगाते आशीष की पीठ लकड़ी हो दर्द से चरमराने लगती है, परंतु उसके नसीब में चैन नहीं. कभी मेहमान ... तो कभी स्टेशन!

थकावट शरीर के साथ घुल गयी है, इसीलिए आशीष इकहरी हड्डियों वाला नवयुवक है ... मांस तो पसीने से गलबढ़ ही नहीं पाता. आशीष की नाक लंबी, आंखें कजरारी हैं जिनका पैनापन घनी पलकों से झांकता है.

उसके लकलके व्यक्तित्व को बालों के घने गुच्छे और भी अधिक रसिक बना देते हैं, परंतु स्वरा ने सदा एक खास मुद्दे पर उसकी अवहेलना की है इसलिए आशीष अपनी आंखों से ही स्वरा को प्यार कर दुलरा लेता है ... इसके आगे उसने कहीं भी कोई 'इन्वालमेंट' की बात नहीं सोची.

वे दोनों साथ उठते-बैठते बात करते नहीं अघाते. एक दिन भी आशीष यदि शाम छः तक स्वरा के घर नहीं पहुंचता तो वह खीजती हुई मीठे उलाहनें बिखेर देती है, "हां-हां, तुम्हें भला फुरसत कहां मिलेगी! सारे तुम्हारे काम-काज जरूरी हैं. बस यहां आना ही एक फालतू काम है न, इसीलिए देर करते हो." इस पर भी आशीष चुप रह स्वरा के उन कामों में हाथ बंटाने लगता है जो कलात्मक और प्यारे हैं.

स्वरा कितना भी गुस्से का अभिनय करे परंतु आशीष की प्रत्येक जरूरत की उसे चिंता है. नाश्ते में बहुधा आशीष के पसंद की तली मछली और अंडे के ब्रेड-रोल बनते हैं. और हर माह आशीष के लिए सुंदर शर्ट सिल जाता है. आशीष भी किसी न किसी बहाने स्वरा की पसंद के रिकार्ड ला स्टीरियों पर बजाता है. मंत्रमुग्ध हो उसमें डूबने के बाद वह अपनी बड़ी-बड़ी गुलाब-सी आंखें हिलाने लगती है, "यह क्या बेहूदगी है भला, बिना पूछे तुम्हें इतना खर्च करने को किसने कहा है?"

"नाराज क्यों होती हो? रिकार्ड तो मैं बजाने को ही लाया हूं, वापस हो जायेगा." परंतु रिकार्ड कभी वापस नहीं होता.

एक समय का भोजन आशीष स्वरा के घर ही खाता है. एक को साथ खाना अच्छा लगता है, दूसरे को खिलाना अच्छा लगता है. यह सिलसिला टूट नहीं सकता.

पड़ोसियों की अश्लील आलोचना का सख्ती से सामना करके भी स्वरा अपने ममता भरे स्वागत को नहीं तोड़ सकी है. उसकी बड़ी आंखें फैल जाती हैं, "क्यों आशीष, बेवकूफों के कमेंट्स से क्या हम अपना निर्दोष सुख छोड़ देंगे?"

"बिलकुल ठीक है. मैं कोई जुआ खेलता हूं. शराब पीता हूं. खाना ही तो खाता हूं. मेरे बॉस मुझे इसलिए तंग करते हैं कि उन्हें यह दुख है कि वे यही तुम्हारे हाथ का बना भोजन क्यों नहीं खा पाते."

आशीष का दोस्त शर्मा उसे बहुधा छेड़ता है, "क्या यार आशीष, तुझसे तो दो साल में एक लड़की भी नहीं अपनायी गयी, गेलू जैसे चक्कर ही लगाते रहते हो."

"तुम अच्छी तरह जानते हो शर्मा कि स्वरा ऐसी-वैसी लड़की नहीं है ... मैं उसके पीछे कुछ भी सुनना पसंद नहीं करता हूं." आशीष एकदम तन जाता है."

"बिगड़ो मत मेरे यार, जानता हूं स्वरा बहुत गंभीर, बढ़िया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शालीन लड़की है, परंतु तू कह दे कि तुझे वह पसंद नहीं. इतना भी दब्बूपन क्या है भला . . . कह क्यों नहीं देता अपने मन की बात?"

"मैं तो प्रेसीडेंट बनना चाहूंगा तो क्या बन जाऊंगा? या मुझे तो एंपाला गाड़ी पसंद है तो क्या खरीद लूंगा?" आशीष साइकिल पर चढ़ जाता है.

"जानता हूं कि तुम्हारी स्वरा बहुत सुपीरियर चीज़ है, पर प्यार में तो छोटा-बड़ा, अच्छा-बुरा देखा नहीं जाता."

"पर प्यार की कोई बात ही हमारे बीच नहीं उठती, तू क्यों बेकार सिर दर्द पैदा करता है?" आशीष उसके खुले मुंह को छोड़ आगे बढ़ जाता है.

▣

है तो स्वरा बहुत ही लुभावनी. देखो तो देखते रह जाओ . . . किसी भी भीड़ में उसे अलग से पहचाना जा सकता है.

आशीष उसके सामने फीका पड़ता है . . . या फीकापन अनुभव करता है, क्योंकि एक पुरुष अपने जिस पद और नौकरी के गर्व पर चमकता है, वही आधार आशीष के पास नहीं है. मर्द की तो सूरत से अधिक नौकरी की सीरत मूल्यवान है . . . आशीष की नौकरी . . . ?

एक अदना-सा इंसपैक्टर! कितना भी अच्छा पैंट और शर्ट वह पहने, रहेगा तो थर्ड क्लास कर्मचारी ही . . . !

▣

स्वरा जैसी लड़की के अंतर्मन में यदि एक गज़ेटेड ऑफीसर की चाह है तो अस्वाभाविक नहीं. और स्वरा का अहं तो वैसे भी बहुत है . . . लोगों की दृष्टि में उसका पति एक थर्ड क्लास कर्मचारी रहे, इसे वह बर्दाश्त नहीं कर सकती.

जब कभी कहीं भी पब्लिक सर्विस कमीशन से नयी गज़ेटेड पोस्ट का आवेदन पत्र निकलता, वह उत्साहित हो आशीष को बाध्य करती कि वह तुरंत आवेदन पत्र भेज दे. इसके बाद ढेर सारी हिदायतें शुरू हो जातीं, "सेलेक्ट होना है तो अंग्रेज़ी बोलना सीखो, कब से सिर ठोंक रही हूं कि अपना अंग्रेज़ी का कॅरसपॉंडेंस कोर्स ही पूरा कर लो, आशीष बुरा मत मानो, तुम ज़रा भी महत्वाकांक्षी नहीं हो . . . अन्यथा अब तक तो छोटा-मोटा बिज़नेस ही जमा लेते, वह भी इस नौकरी से अच्छा होता."

आशीष इस झिड़की से घुटता है . . . बोलता नहीं. नाश्ते की मेज पर गुमसुम बैठ वह अपना रोष व्यक्त करता है . . . आलू-चाप पलटता हुआ वह कॉफी ठंडी कर लेता है.

स्वरा ही कुछ नरमती है और जबरदस्ती आलू-चाप का एक बड़ा-सा टुकड़ा आशीष के मुंह में ठूंस कहती है, "देख तो . . . आज मेरा हाथ जल गया." तब स्वरा की मीठी आवाज आशीष को बर्फ के टुकड़े के समान पिघला देती है और वह चिंतित हो बरनॉल ढूंढने लगता है.

दोनों अपने असीम स्नेह के बावजूद अपनी-अपनी सीमा रेखाओं से परिचित हैं जिसे वे पार नहीं कर पा रहे हैं.

ऐसा तो नहीं है कि आशीष ने एक अच्छे जॉब के लिए प्रयत्न ही नहीं किया है . . . स्वरा के साथ हसीन ज़िंदगी जीने का हौसला तो किसी भी लड़के को होगा ही.

उस बार डिप्टी-कलॅक्टरस की पोस्ट के लिए वह कित[illegible] 'प्रिपेयर्ड' हुआ था. पूरे छः माह घर की दीवारों में घुट [illegible] 'कांपीटीशन सक्सेस' की फाइलें चाट ली थीं.

अपना विषय उसे रटा था.

हिस्ट्री की तारीखें कंठस्थ थीं.

आत्मविश्वास से उसने लिखित परीक्षा में सत्तर प्रति[illegible] अंक प्राप्त किये और उसका इंटरव्यू कॉल भी आ गया. यहां [illegible] कि इंटरव्यू बढ़िया रहा. सारे प्रश्नों के उत्तर उसने बखूबी दि[illegible]

पी. एस. सी. के एक परिचित सज्जन ने उसे कह भी दि[illegible] कि इंटरव्यू में वह सिलेक्ट हो गया है.

परंतु लिस्ट डिक्लेयर होने की प्रतीक्षा . . . लंबी होती ग[illegible] और उस से भी अधिक अफ़वाहें गर्म हो गयीं.

वह भागा. परिचित व्यक्ति बोले, "अरे भाई, कई म[illegible] धूल चाटने के बाद तो पेपर जंचे . . . और इंटरव्यू हुआ है . . . अब लिस्ट में भी तो बहस होगी ही."

"मेरिट से नहीं लेंगे क्या?" आशीष का मुंह छोटा-[illegible] हो गया.

"दस हजार से लोग पंद्रह-बीस तक पहुंच गये हैं. परंतु [illegible] अपने-अपने ही. तुम किसी के अपने हो?"

"नहीं तो."

लिस्ट में नाम है यह सोच ही आशीष ने बड़ी पार्टी देने [illegible] हौसला सजा लिया था और स्वरा को सिल्क की साड़ी देने [illegible] निश्चय किया था.

▣

अचानक एक दिन आशीष को 'रिजेक्शन कार्ड' मिला, [illegible] लेकर वह बिस्तर पर बैठा चुपचाप रोता रहा था.

उसने अपनी किस्मत की ही घड़ी को दोष दिया जो [illegible] चाबी न लगने से बंद थी.

वही साइकिल . . .उससे लटकता टिफन . . . मां की खां[illegible] पिता का थका-निराश चेहरा.

इस पर भी पिछले कई चुनावों में उसकी ड्यूटी इंटी[illegible] के गांवों में लगी थी, यद्यपि उसकी मां को दमा उमड़ा था, [illegible] भी उसे पड़ोसियों के रहम-करम पर छोड़ वह गांव तक बैल[illegible] में धचके खाते पहुंचा था.

उन्हें बताया गया था कि चुनाव के लिए बहुत खर्च हो [illegible] है. चुनाव में काम करने वालों को बहुत सुविधाएं दी जा रही [illegible] परंतु आशीष हैरत में पड़ा रह गया जब सरपंच ने उसके भोजन [illegible] की व्यवस्था ढंग की नहीं की. दो घंटे बाद कुछ आटा व आलू [illegible] भेज दिया गया. खिचड़ी के अतिरिक्त और कुछ बनाने की [illegible] आशीष की आदत नहीं थी . . .आखिर एक चपरासी ने जैसे-[illegible] बाटियां बना दीं.

इनके बाद वाले चुनाव के समय तो ट्रक में बैठे-बैठे हड्डी[illegible] पसली तक हिल गयी थी, उस पर बीहड़ जंगल में ट्रक [illegible] बिगड़ गया. पर आशीष को तो गांव पहुंचकर रिपोर्ट करना [illegible] था. अन्यथा नौकरी के लेने-देने पड़ते.

सांप-बिच्छू, शेर-चीते से डरता आशीष पैदल पगडंडी [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लघुकथा

परोपकारी

■ ऑस्कर वाइल्ड

रात का समय था और वह अकेला था. उसने दूर एक भव्य नगरी का प्राचीर देखा और वह उसकी ओर बढ़ा...

जब वह पास पहुंचा तो उसने नगरी के अंतराल से आनंदमय पदचाप और प्रमुदित मुखों के हास और अनेक वीणाओं की उन्मत्त झंकार के शब्द मुखरित होते सुने. उसने मुख्यद्वार खटखटाया और द्वारपालों ने उसके लिए द्वार खोल दिये.

और उसने देखा एक भवन, जो स्फटिक का बना था और जिसके सामने स्फटिक के सुंदर स्तंभ खड़े थे. स्तंभों पर फूलों के वंदनवार लटके थे और घर के भीतर और बाहर चंदन की मशालें जल रह रही थीं. उसने भवन में प्रवेश किया.

जब वह पद्मराग के सभाकक्ष और मरकत के सभाकक्ष से होता हुआ भोज के कक्ष में पहुंचा तो उसने नीलरक्ताभ आसन पर एक व्यक्ति को लेटे पाया, जिसके बालों में गुलाब के फूल लगे थे और जिसके अधर मदिरा से लाल हो रहे थे.

वह उसके पास गया और उसके कंधे पर हाथ रखकर बोला, "तुम्हारा यह जीने का ढंग कैसा है?"

वह युवक उसकी ओर मुड़ा और उसे पहचानकर बोला, "लेकिन मैं तो पहले कोढ़ी था, तुमने मुझे स्वस्थ कर दिया. और किस तरह जीवन व्यतीत करूंगा?"

उसने उस भवन को त्याग दिया और सड़क पर लौट आया. कुछ देर बाद उसने एक स्त्री को देखा, जिसका मुखड़ा तथा परिधान रंगीन थे और जिसके नूपुरों में मोती लगे थे. एक युवक उसका पीछा एक शिकारी की तरह मंदगति से कर रहा था. युवक ने दोरंगी कमीज पहनी हुई थी. स्त्री का मुख एक मूर्ति की तरह सुंदर था और नवयुवक की आंखों में वासना की चमक थी.

उसने द्रुत गति से उसका पीछा किया और नवयुवक के हाथ पर हाथ रख कर कहा, "तुम इस स्त्री की ओर क्यों देख रहे हो और उसे इस तरह क्यों घूर रहे हो?"

नवयुवक पलटा और उसे पहचानकर कहा, "पर मैं तो अंधा था. तुमने मुझे दृष्टि दी. फिर मैं और किसे निहारूं!"

उसने दौड़कर स्त्री का रंगीन आवरण छुआ और कहा, "क्या पाप के अतिरिक्त कोई और मार्ग नहीं है?"

औरत उसे पहचानकर हंसी और बोली, "पर तुमने तो मेरे पाप क्षमा करा दिये थे और यह, मार्ग सुखमय भी है."

वह नगर छोड़कर बाहर चला गया.

जब वह नगर के बाहर हो गया, तो उसने सड़क के किनारे एक नवयुवक को बैठे रोते देखा.

वह उसके पास गया और उसके लंबे बालों को छूकर बोला, "तुम रोते क्यों हो?"

नवयुवक ने सिर उठाकर उसे देखा और उसे पहचान कर बोला, "मैं तो मर चुका था और तुमने मुझे फिर से जीवन दिया. मैं रोऊं नहीं, तो भला क्या करूं?" □

● प्रस्तुति: जया रावत

लगभग दौड़ने लगा था, तभी दो डाकुओं ने उसे धर दबोचा..!

अच्छा हुआ माल गया, जान रह गयी. उसकी मेहनत की कमाई से खरीदी घड़ी व पैन ही वे ले गये थे.

लौटा तो मच्छरों के काटने से बुखार आ गया. स्वरा बहुत बड़बड़ाई, "ऐसी सड़ी-गली इंस्पेक्टरी में तुमने प्राण हलकान कर रखे हैं. कब तक ऐसा चलेगा?"

आशीष भी भर गया था. उसे क्या पता था कि कब तक ऐसा चलेगा और वह क्या करेगा? ऊपर से उस दिन जब बाजार में आशीष को स्वरा ने उसके बॉस के लड़के को साइकिल पर लादे-हांफते देखा तो वह उखड़ ही गयी, "मुझे नहीं अच्छा लगता कि तुम चपरासी जैसे काम करो, यह भी कोई नौकरी है भला!"

"बॉस के आगे-पीछे तो सभी नौकरियों में थोड़ा-बहुत घूमना पड़ता है स्वरा!"

"नहीं-नहीं, यह सब गलत है. गजेटेड पोस्ट की अपनी कुछ डिग्निटी होती है. यह छीछालेदर तो नहीं. आशीष अब यदि तुम गजेटेड पोस्ट के लिए संघर्ष नहीं करोगे तो मेरी तुम्हारी बिल्कुल नहीं पटेगी!" स्वरा रूठी.

इत्तफाक से उसके ही डिपार्टमेंट के एक्सटेंशन के कारण एकाएक अस्सी पोस्ट एडवरटाइज हुईं.

"वह बहुत अधिक आशान्वित हुआ और उसने आवेदन पत्र लगा दिया. अब रूठी स्वरा को वह मना सकेगा. इस बार तो कोई कारण ही नहीं कि उसका सेलेक्शन न हो.

अब उसे इतना पढ़-लिखकर रोज़मर्रा के अपमानित व्यवहार नहीं झेलने पड़ेंगे.

इंटरव्यू के लिए रवाना होते समय स्वरा ने 'गुड-लॅक' कह आदेश दिया था, "देखो, जरा ठीक से उत्तर देना. मुंह में मत बोलना. लौटने की जल्दी न करना, पता करके वापस आना."

सर्टिफिकेट चेक-अप होते समय क्लर्क ने खीसें निपोर कहा था, "आपका डायरेक्ट आवेदन पत्र तो आया ही नहीं... डिपार्टमेंट से जो आया था, उसी पर इंटरव्यू कॉल भेजा."

जब आशीष ने ए. डी. जेब से निकाला तो वह बेशर्मी से हंसा, "आया होगा.... बाद में तो हमने आवेदन पत्र देखे ही नहीं. दस हजार तो पहले ही देख लिये थे न."

आशीष ने घड़ी देखी. तीन सेकंड... दो सैकंड.

भला इतने कम समय में वे क्या कैंडीडेट की योग्यता मापते होंगे. इतने कम समय में तो सूरत भी नहीं देखी जा सकती.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसपास बिखरी कहानियां

परंपराएं

▣ रामानंद राठी

गांव के दो ही बड़े जमींदार थे जोधाराव और लादूसिंह. किसनू महतो के शब्दों में गांव के दो अभेद्य गढ़. इस बार दुर्गा-अष्टमी के अवसर पर लादूसिंह दुर्गा की नयी मूर्ति पुरानी की जगह प्रतिस्थापित करना चाह रहा था. बात उड़ती-उड़ती जोधाराव के कानों में पहुंची. जोधा उबल उठा, "अरे, कोई लोक-लाज बची है इस गांव में. लादू पुरानी मूर्ति को हटवा रहा है, अपने पुरखों की परंपरा को हम हर्गिज़ मिटने नहीं देंगे."

उमराव, पाछी, लीलिया, जिसने भी सुना, भड़क उठा. आखिर जोधाराव का उन्होंने नमक खाया था. यही वक़्त था जब उन्हें अपनी वफ़ादारी का परिचय देना था. जोधा की खोली के सारे मजदूर एकजुट हो गये कि अगर लादू ने यह नापाक हरकत की तो खून-खच्चर हो जायेगा.

खबर थी, मूर्ति एक दिन पहले लादूसिंह के घर आ रही है. जोधा ने अपने सभी आदमियों को हिदायत दे दी कि मूर्ति गांव में सलामत न आने पाये, रास्ते में ही उसे खंडित कर दो. उधर लादू भी सतर्क था. पूरे बीस आदमी मूर्ति लाने भेजे जा चुके थे.

मूर्ति आयी और जोधा के आदमियों द्वारा पीर के तिबारे पर ही रोक ली गयी. जमकर संघर्ष हुआ. दोनों ओर के दो-दो व्यक्ति मारे गये. मूर्ति तिबारे में वहीं की वहीं रुकी रही.

लादू ने जब सुना तो किसी तरह सुलह करने जोधा के पास पहुंचा. दोनों जमींदार काफी देर तक तर्क-वितर्क करते रहे. आखिर सुलह हुई कि लादू नयी मूर्ति जरूर स्थापित करेगा लेकिन पुरानी मूर्ति को हटाकर नहीं, उसी के पास नया मंडप बनवाकर उसमें.

▣

दूसरे दिन स्थापना-आयोजन पर दोनों जमींदार गले मिले. खूब राग-रंग हुआ. मृतक मजदूरों के परिवारों को आज रोने-धोने की सख़्त मनाही थी. गांव की परंपरा थी कि ऐसे पवित्र आयोजनों पर कोई रुदन न हो!

कितनी शीघ्रता से समय उड़ गया. और धड़काती हुई आवाज़ आयी . . . नंबर पचास . . .मि. आशीष!

"विश यू बैस्ट ऑफ लॅक." वह मुस्कराया. आशीष इंटरव्यू की सूली पर लटकने चल पड़ा.

वे सब पांच थे.

"बता सकते हो . . . विभाग ने क्या-क्या नये कार्य किये हैं?"

"और पूंजी का सही उपयोग क्या होगा?"

"स्पोर्ट्समैन थे? क्रिकेट बैटिंग पर कुछ बोलो."

"जाने दो." पांचवें ने बिना सर उठाये ही कह दिया.

पिछले चार बार तो प्रश्नों की अखाड़ेबाज़ी थी . . . इस बार तो जैसे टरका दिया गया था.

▣

विभागीय प्रश्न ही नहीं पूछे और न ही उनके सामने विभागीय रिकार्ड की कोई फाइल ही वहां थी. तब भी वह आशा से भरा था. दो दिन तक अपने एक परिचित मित्र के पास रहा. जब मित्र के अफसर पिता लौटे तो उन्होंने फोन पर बातचीत की. एक खाली मुद्रा में बोले, "घर जाओ बेटे, यहां रहने से क्या होगा? तुम्हारा कोई सामाजिक-राजनैतिक प्रेशर है क्या?"

"जी नहीं."

"तुम किसी पार्टी के आदमी हो या किसी भी पार्टी के आदमी नहीं बिल्कुल भी ?"

"नहीं."

"तो यहां क्यों पड़े हो? जो किसी पार्टी का आदमी नहीं.. वह सही चुनाव का आदमी नहीं. अब लौट ही जाओ . . . वे तो अपने-अपने आदमी लेंगे. इंटरव्यू तो मात्र दिखावा है. इसीलिए तो फ्रेश कैंडीडेट लिये हैं. वे भी फर्स्ट क्लास ही हैं. डिपार्टमेंट से कोई लिया ही नहीं.

▣

आशीष ने सर नीचा किया और उसे लगा जैसे उसके सिर पर कई डंडे पड़ रहे हैं. कितनी विचित्र स्थिति थी कि वह इन डंडों से अपनी आत्मरक्षा तक नहीं कर सकता था. आंसू आंखों से अनगिनत गिरने लगे और स्वरा की सूरत हिलने लगी. जब वह फ्रेश कैंडीडेट था तो अनुभवहीनता उसकी अयोग्यता थी, अब विभागीय अनुभव है तो फ्रेश कैंडीडेट्स की आवश्यकता है.

उसका डूबता मन एक बार जोर से उछालें लेने लगा कि वह भागे और भागता हुआ देश की सारी पीर्टियों के झंडे फेंक दे और कहे, "हां-हां, मैं किसी झंडे के नीचे नहीं परंतु राष्ट्रीय झंडे के नीचे तो हूं. माना कि मैं किसी पार्टी का आदमी नहीं परंतु इस देश का एक योग्य, होनहार ज़िंदा आदमी तो हूं, जिसे सही जिंदगी जीने का अधिकार नहीं दिया जा रहा!"

● गवर्नमेंट गर्ल्स डिग्री कालेज, खंडवा (मध्य प्रदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डील साहब कौन थे, यह नहीं जानता, न ही यह कि इस तालाब का नाम डील साहब के नाम पर ही क्यों और कब रखा गया, लेकिन यह सभी जानते हैं कि यह तालाब इस शहर की पूरी गतिविधियों पर नजर रखता है. इसके पक्के घाटों पर बैठकर दिन में मुहल्ले के लोग नौगुटिया और चौपड़ खेलते हैं, शाम को बूटी छनती है, गांजे का दम लगता है और नगरपालिका की कार्यवाहियों से लेकर शहर की राजनीति तक की बेलाग चर्चा होती है, लेकिन तालाब शांत रहता है. आसमान में उड़ते परिंदे की छाया इसमें यथावत देखी जा सकती है, ठीक उसी तरह जिस तरह कि सुबह किनारे के बने कच्चे-पक्के मकानों की ऊंची-नीची तस्वीरें और शाम दीये, लालटेन और बिजली के लट्टुओं की झिलमिलाती रोशनी की खूबसूरती इसमें कैद रहती है. छठ के दिनों में सुबह-शाम आग देने के लिए सूप में फल-फरहरी के ऊपर टिमटिमाती रोशनी, हवा की लहरों पर तैरती-उतराती तैरायी गयी सिरकी की बनायी गयी चिन्नई पर दीये, और गरहन में नहाने वालों की भीड़ श्रद्धानत होकर इस तालाब के जल को स्पर्श करती है. लेकिन न जाने कितने वर्षों से लोगों के मन में कलुषता धोते-धोते अब डील साहब के तालाब के पानी का रंग भी बदलने लगा है.

आज तैराकी प्रतियोगिता थी. तालाब पर बड़ी चहल-पहल थी. मुनादी पहले से फिर चुकी थी, इसलिए आठ बजने के पहले से ही रंगीन, सादे और मटमैले कपड़े पहने लोगों की टोलियां चारों तरफ से तालाब के दक्खिन तरफ मंदिर वाले पक्के घाट पर इकट्ठी होने लगी थीं.

चबूतरे की सबसे निचली सीढ़ी पर डॉक्टर हरिशंकर खड़े थे. उनकी झंडी हिलते ही तैराक लड़के पानी में छपाक से एक साथ कूदे और देखते ही देखते सातों लड़कों को पीछे छोड़ गोपाल कई गज सबसे आगे निकल गया.

उधर 'बाल हिंदी पुस्तकालय' से सटे मस्जिद के पीछे वाले पक्के घाट की सीढ़ियों के नीचे छाती भर पानी में पाली की रंग-बिरंगी रस्सी बंधी थी. लोग हाथ उठा-उठाकर शोर कर रहे थे, तैरते आ रहे तैराकों को प्रोत्साहन दे रहे थे. गोपाल अब भी सबसे आगे था. उसके हाथ पानी में तेजी से चल रहे थे. वह बहुत

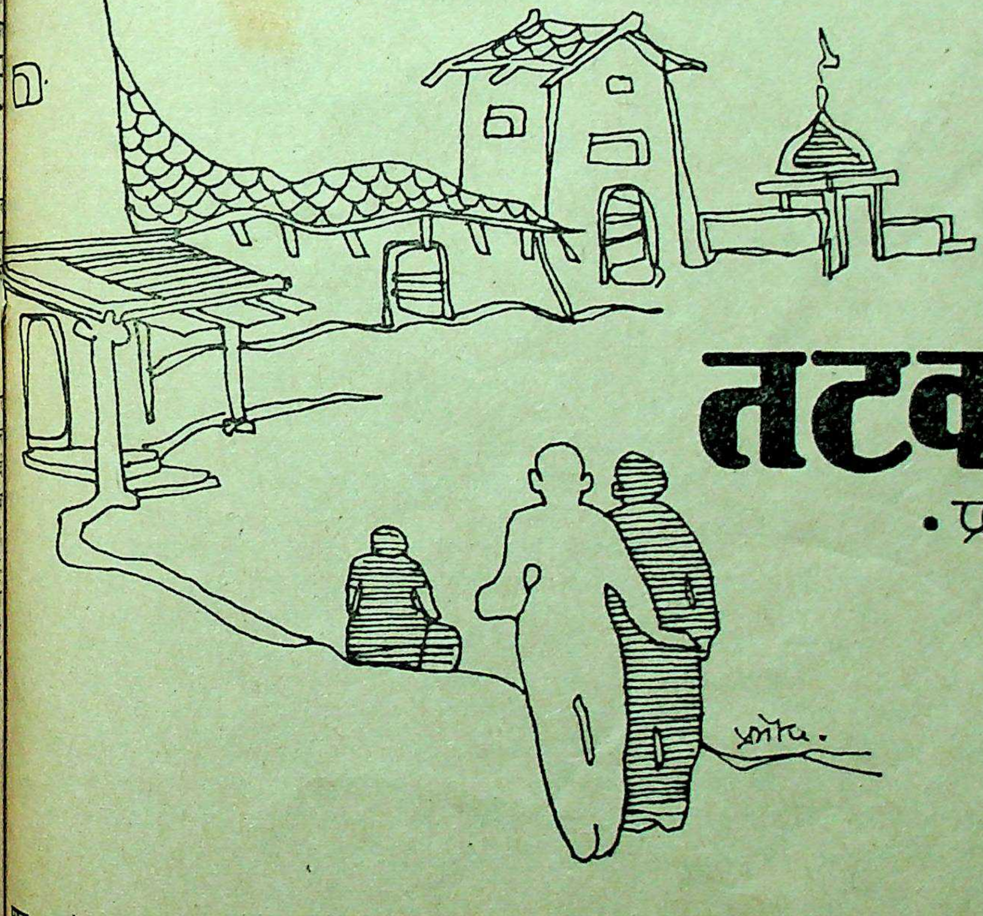

तटकथा

• प्रमोद सिन्हा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेज तैर रहा था. तभी उसने हांफते हुए एक झटके से पाली छू दी और छाती भर पानी में अभी खड़ा ही हुआ था कि किनारे खड़ी मोदिआइन ने कहा, "गोपाल बाजी मार लेलस."

शिवमंदिर घाट के दूसरी तरफ वाले घाट पर भी बड़ी भीड़ थी. तैराकी-प्रतियोगिता देखने के लिए रंगा बाबू, ललनजी, नसरत हुसैन से लेकर महावीर स्थान वाले पुजारी जी, थाना डील साहब के सिपाही, आसपास रहने वाले कुंजड़े तथा छोटे-बड़े लड़के-लड़कियों की बड़ी उत्साहित भीड़ थी. पर भीड़ में से किसी का भी ध्यान मोदिआइन की ओर नहीं गया. मोदिआइन तकाजे से लौटते समय भीड़ देख वहां थोड़ी देर के लिए यों ही रुक गयी थी. मोदिआइन ने अपने ऊबड़-खाबड़ पायरिया वाले दांतों के बीच से पिच से थूका और कतराकर अपनी दूकान की ओर बढ़ने लगी थी.

इस इलाके में मोदिआइन की दूकान 'महाशक्ति आयुर्वेद भवन' के साइनबोर्ड के ठीक नीचे थी, जिस पर गांव से कचहरी मुकद्दमा लड़ने आये हुए लोग सतुआ खाने चले आते थे. गोबर से लिपी-पुती दूकान में दीवार से सटकर घो-मांजकर चमचमाती हुई लोटे सहित चौड़े बार वाली थालियां एक करीने से सजाकर रखी रहती थीं. मुअक्किल इनका प्रयोग होटल के प्लेटों से भी अधिक आत्मीय ढंग से करते थे.

नींबू का आचार, मंह-मंह महकती अमिया-पुदीना की चटनी और लंबी चुह-चुह करती हरी-मिर्च जिस ढंग से वह अपने ग्राहकों को देती, उससे उसकी आत्मीयता झलकती थी. यही कारण था कि डील साहब के तालाब के चारों ओर इकट्ठा होने वाले रिक्शे, इक्केवालों से लेकर एक फर्लांग दूर कचहरी तक के मुअक्किल मोदिआइन के यहां आने में एक सुकून का अनुभव करते थे, क्योंकि खाने के बाद यहां बतरस का भी मजा मिलता था.

दूकान में दउरा चंगेली में जौ, चना का सतुआ, सतुई की पिंडी वह बड़ी हिकमत से बनाती और मचिया के पास ताख पर बैठे लक्ष्मी-गनेश के मूरत के नीचे वाले खाने में बोइयाम में खटमिट्ठा चूरन भी रखती जिसका स्वाद मुहल्ले के लड़कों की जुबान पर चढ़ गया था.

अपने घर से टाउन स्कूल जाते समय कांख में बस्ता दबाये एक हाथ में मोदिआइन से पांच पैसे का चूरन लिये गोपाल दूसरे हाथ से चुटकी-चुटकीभर उसे अपनी जीभ पर रख इस कदर चटखारे भरता कि दूसरों के मुंह में भी पानी आ जाता. तब इस स्वाद के आगे उसे कुनकुन साहू की दूकान की मिठाई भी फीकी लगती थी.

टिफिन में अपने दोस्तों के साथ स्कूल के कसरत-घर के दाहिनी तरफ वाले पीपल के पेड़ के नीचे बैठकर गोपाल अपने दोस्तों से ऊपर डाल के खोंडर में घोंसला बनाये गये उल्लू, संस्कृत और हिंदी पढ़ाने वाले हेड पंडित जी, रूपम और मोहन सिनेमा के रंगीन पोस्टरों के अलावा कभी-कभी गप-सड़ाका मारते-मारते इस बात पर भी बहस कर बैठता कि डील साहब के तालाब में किस साल किसने कितनी बड़ी मछली मारी थी. यों मछली मारने के लिए बंसी लगायी जाती थी और आटे की जगह सतुआ की गोली या चारे को जमीन से खोद-निकालकर कंटिया में तरकीब से फंसाना पड़ता था, पर कभी-कभी धोती लेकर भी दो आदमी दोनों कोना पकड़ पानी में हेल जाते और धोती पानी के भीतर बिछा उसे उठाकर छत की तरह तानते तो पानी खुद-ब-खुद गर जाता और छोटी-छोटी मछलियां निकल आतीं. कुछ लोग तो पानी में घड़ा औंधाकर भी कमर और बरछा लेकर तैरते-तैरते बीचोंबीच चले जाते ताकि बड़ी मछलियों का शिकार कर सकें, पर ऐसी हिकमत करने वाले कम ही थे, क्योंकि जलकुंभी की वजह से उन्हें परेशानी उठानी पड़ती थी. इसमें बीचों-बीच तैरा नहीं जा सकता था और कभी-कभी जलकुंभी में छिपने की वजह से मछलियां भी नहीं फंसती थीं, तब तालाब की सफाई के लिए उसके चारों ओर के सड़क के किनारे-किनारे रहने वाले खेदन-लाल मुख्तार, नारायण मास्टर, बिपिन सेठ, मोदिआइन, चमरटोली, चिकटोली, तरी मुहल्ला और यहां तक कि थाना डील साहब के तालाब के सिपाहियों से भी चंदा वसूला जाता. जो भी चंदा नहीं देता था उसके दरवाजे पर रात में खल्ली से खूब मोटी-मोटी गालियां लिखी जातीं और सुबह-सुबह बड़ा बमचक मचता था, पर अक्सर यह बात मोदि-आइन को ही भुगतनी पड़ती थी, क्योंकि वह कंजूस थी और इसलिए भी कि उसकी गालियों का इस मुहल्ले में कोई बुरा नहीं मानता था. बल्कि मोदिआइन की इस लरछुत आदत के विपरीत अगर कुछ दिनों तक शांति बनी रहती तो यहां के लोग कुछ खाली-खाली-सा महसूस करने लगते थे. इसीलिए गोपाल इसे चिढ़ाने से बाज नहीं आता था. वह एक न एक शरारत खड़ी करता रहता जिससे मोदिआइन की जुबान का ताला भी खुलता रहे और लोगों को मज़ा भी आता रहे.

तालाब के किनारे ही गोपाल का घर था. गोपाल के बाबूजी कचहरी में मुंशी थे. वे सुबह ही सुबह आसमान में सुकवा उगते ही अपने बिस्तर से उठ जाते और 'जाके प्रिय न राम वैदेही...' का अपना प्रिय भजन गुनगुनाने लगते. भजन-ध्यान खतम होते ही खंखारकर इस तरह ज़ोर से आवाज लगाते कि गोपाल के कमरे तक उनकी दहशतभरी खंखार की आवाज पहुंच जाती. बाबूजी की इस आदत से गोपाल को बड़ी कोफ्त होती, पर इससे बचने का भी कोई चारा नहीं था. कभी-कभी गोपाल चादर मुंह तक तानकर बहटिया जाता, पर इससे उसका पिंड नहीं छूटता था, क्योंकि आहट न मिलने पर मुंशीजी सीढ़ियां चढ़ खुद ऊपर आ बेटे की लालटेन जला देते और उठकर न पढ़ने पर डांटने लगते थे. सुबह-सुबह डांट खाने पर गोपाल को लगता कि उसका पूरा दिन खराब हो जायेगा और स्कूल में भी मार पड़ेगी. इसलिए ऐसा भी होता कि मुंशीजी के नीचे से पुकारने पर वह बोल देता और फिर अपने जागने के सबूत में बर्राक रटे-रटाये पाठ को ही आंखें बंद कर ज़ोर-ज़ोर से दोहराता तो सुबह की ठंडक में उसे बिस्तर से उठकर लालटेन जलाने या टेबुल-कुर्सी पर बैठकर किताब खोलने की ज़रूरत नहीं पड़ती और नीचे बैठे बाबूजी यही समझते कि वह खूब मेहनत से पढ़ रहा है.

नहा-धोकर आने के बाद बाबूजी नाश्ता नहीं करते थे इसलिए उन्हें शुरू से जल्दी खाने की आदत थी. खाने के पहले ताख से उठाकर मुंह में वे नकली दांत लगा लेते और आसनी या पीढ़ा पर पालथी मारकर खाना ज्यादा पसंद करते तो गोपाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को अच्छा नहीं लगता, क्योंकि दाल-भात और सतुआ का चोखा प्रेम से खाते समय उनके ऊंचे जबड़े चलने लगते और मुंह बंद रहता. वे चारों उंगलियों से सानकर कौर मुंह में डाल आंखें बंद कर लेते तो खूब चबा-चबाकर खाने के कारण उनकी कनपटी की नसें भी नीली पड़ जाती थीं. उस समय जबड़े की पेशियों पर पड़ने वाले दबाव के बावजूद उनके चेहरे के तृप्त भाव को आसानी से देखा जा सकता था.

ढलान के बाहर वाले ओसारे की चौकी पर हर वक्त जाजिम बिछी रहती. मुंशीजी नींबू का शर्बत पीकर सुबह बस्ता ले कचहरी के काम में लग जाते और मुद्दई या मुद्दालय की तरफ से मुकद्दमे की बारीकियों की खाल उधेड़ने लगते. वकील साहब को भी पक्की सलाह देने की तैयारी करते. मोटिया के लाल कपड़ों में बंधे पतले-मोटे बस्ते उनके दाहिने--बायें ओर रखे रहते जिसमें टैग से नत्थी किये मालगुजारी और फौजदारी के कागजात अपनी पूरी दास्तान और कानूनी गुत्थियों सहित उसमें बंद रहते. नाक पर पतली-टूटी कमानी की जगह धागा बंधा चश्मा चढ़ाये पैरवी के लिए वे एक-एक कागज़ को ध्यान से पढ़ते और कैथी में कुछ न कुछ लिखते जाते. कैथी के अक्षरों को गोपाल पढ़ नहीं पाता, पर उसके मिडिल पास होते ही दूरदर्शी बाप की तरह मुंशीजी बराबर इस बात पर जोर देते रहे कि उसे कैथी सीख लेनी चाहिए, क्योंकि खानदानी पेशे में महारत हासिल करने के लिए इसके जानने के सिवा और कोई दूसरा चारा नहीं है.

मुंशीजी को अपने पेशे के अलावा और किसी दूसरी बात की चिंता नहीं थी, जबकि शहर में बढ़े दामों के विरोध में जुलूस और नारों के माध्यम से महंगाई, बेरोजगारी, काला-बाजारी, जखीरेबाज़ी के खिलाफ युवकों के इतने जबरदस्त प्रदर्शन कभी नहीं हुए थे. स्थिति की सुरक्षा के लिए पूरी तरह वातावरण पर काबू बनाये रखने का प्रयत्न हो रहा था.

लेकिन मुंशीजी के घर का महौल दूसरा ही था. वे हड़तालियों के सख्त खिलाफ थे. इसलिए गोपाल को घर में हड़तालियों के विषय में बातचीत करने तक की मनाही थी. बूढ़े लोगों की तरह अपनी नज़रों से इतने उतार-चढ़ाव देखने के बाद उनका आत्मविश्वास कुछ खो-सा गया था. लेकिन गोपाल के लिए तो सारी दुनिया अपनी नज़रों से देखने के लिए पड़ी थी.

इधर दो-एक रोज़ से शहर में बड़ी हलचल थी. तालाब पर भी चर्चा थी कि खास चौक से जुलूस उठकर बिजली सड़क, टाउन स्कूल और डील साहब के तालाब के किनारे-किनारे होते हुए आर्यसमाज-मंदिर से मुड़कर रमना मैदान तक जायेगा. वहां जनता को सही समाजिक-आर्थिक स्थिति से अवगत कराने के लिए एक आम-सभा होने वाली थी, तो उधर कुछ गुंडों ने शांतिपूर्ण जुलूस को तोड़ने के लिए कुछ लंबे-चौड़े दावे भी किये थे, जिससे झगड़े के आसार नजर आने लगे थे. इसलिए इंस्पेक्टर ऑव स्कूल के हुक्म से स्कूलों में बड़ी कड़ाई कर दी गयी थी. टाउन स्कूल के हेडमास्टर आनंदपति सहाय के नोटिस के मुताबिक सब लड़के अपनी-अपनी कक्षा में साढ़े दस बजे से ही वापस चले गये थे. कोई भी स्कूल के मेहराबदार बरामदे, मैदान या कसरत-घर में नहीं टहल सकता था. खाली घंटों में जहां लड़कों की टोलियां गप्पें मारा करती थीं या इधर-उधर झूमती-झामती

रहतीं वहां आज इस समय क्लास के बाहर कोई दिखाई नहीं पड़ता था. हेडमास्टर साहब के अलावा जैनू मौलवी साहब, आचारीजी और हेडपंडितजी भी इस बात से काफी घबराये हुए थे कि जुलूस में अपने स्कूल के लड़के न शामिल हों, क्योंकि प्रार्थना के बाद मास्टरों की बैठक में इस बात की देखरेख की सख्त हिदायत के साथ पूरी जिम्मेदारी इन्हीं लोगों पर सौंपी गयी थी, पर जूलूस के आते ही नारों की तेज आवाज सुनकर ऐन मौके पर स्कूल भर में बड़ी खलबली मच गयी. फिर सलाह करके गोपाल और उसके साथी पेशाब करने के बहाने क्लास से निकलकर पीछे की पोरसाभर ऊंची चहारदीवारी फानते हुए सरपट भागकर जुलूस में जिस तरह शामिल हुए, इससे उन्हें बड़ा मजा आया, क्योंकि वहां भीड़ थी. इतनी बड़ी भीड़ तो यहां के सावन के सोमारी या मंगरवारी मेले में भी नहीं होती थी.

जुलूस में सबसे पहले कलगी साफा बांधे रिसाले के घुड़सवार थे. फिर खाकी जीपों पर लदे हुए पुलिस के दस्ते आसमान की ओर संगीन किये सूर्य की रोशनी में बेवजह उन्हें चमका रहे थे. शायद वे अपने अहं मसले को सुलझाने के लिए सजग भाव से बैठे हुए थे. जुलूस सड़क के बीचों-बीच गुजर रहा था. उसके दोनों ओर लाठी लिये हुए जवानों की कतार धीरे-धीरे कदम से कदम मिलाते हुए जुलूस का एक अंग बन साथ-साथ चल रही थी. थोड़ा पीछे ट्रकों का एक काफिला भी था, जिन पर आगे-पीछे भोंपूनुमा लाउडस्पीकर लगे थे, और इनके पीछे हजारों लोगों की पैदल भीड़ चल रही थी. लोग बड़ी-बड़ी दफ्तियों पर नारा लिखे हुए उन्हें हवा में काफी जोश-खरोश से बार-बार उठाकर लाउडस्पीकर से बोले गये नारों को बुलंदी से पूरा कर रहे थे.

उनमें जबरदस्त उत्साह था, जिसे किसी तरह भी नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दबाया जा सकता था, 'मेहनतकश खायेगा. इनकलाब आयेगा.'

स्कूल के पास जुलूस में पहले तो गोपाल भीड़ में दुबका रहा, पर थोड़ा-सा आगे बढ़ते ही उसके गले की आवाज़ तेज हो गयी और वह बड़े इत्मीनान से ज़ोर-ज़ोर से नारे लगाने लगा था. अपना हाथ दुख जाने के कारण इसके जोश को देखकर एक आदमी ने अपनी नारे वाली तख्ती इसे थमा दी और अब यह उत्साह में अपने को जमीन से कुछ ऊपर ही समझने लगा था.

जुलूस टाउन स्कूल से डील साहब के तालाब के किनारे-किनारे धीरे-धीरे चक्कर काटता मोदिआइन की दूकान से आर्यसमाज मंदिर की ओर मुड़ रहा था कि गोपाल की नज़र मोदिआइन पर पड़ी तो वह सकपका गया. उसका आधा नारा बाहर और आधा पेट में ही रह गया, क्योंकि मोदिआइन ने गोपाल को देख मुंह बिचका, हाथ पसारकर चोंधर कहा तो उसकी दूकान पर खड़े दो-तीन देहाती मुअक्किल भी दांत निपोरे खी-खी कर हंस पड़े थे.

जुलूस की धक्कम–धुक्की में गोपाल के स्कूल के साथी उससे जाने कहां बिछुड़ गये थे, पर आर्य समाज के मोड़ पर उसकी भेंट दुमुहां-कल पर रहने वाले कपिलदेव नारायण से हुई तो दोनों ही नारा लगाना भूल आपस में बतिआने लगे, "कुनकुन शाह की पांचों ऊंगलियां घी, और सिर कड़ाही में है. उसकी गद्दी बड़ी गुलगुल और आरामदेह है, तभी सुबह से रात देर तक भी वह वहां से हटने का नाम नहीं लेता. सारे मोटे लोग माल काट रहे हैं और यहां पुजारी जी ने मुहल्ले के तालाब में मछली मारने की मनाही कर दी है. आजकल मछली-विभाग वाले इसमें चारा डाले हुए हैं. रात में ही चला जाये मछली मारने. पुजारी मौके पर आ जायें तो उनको पटाने के लिए अधिक से अधिक बीड़ी पिलायी जा सकती है, फिर भी न माने तो.... कहकर आंख दबाते हुए गोपाल ने मस्ती में एक धक्का दिया तो कपिलदेव भरभराकर गिर गया और उसकी कोहनी छिल गयी तो रुआंसा होकर वह बेचारा आधे रास्ते से ही घर लौट गया.

अब जुलूस धीरे-धीरे आगे बढ़ता—बढ़ता रमना मैदान में आम-सभा के रूप में बदलने लगा था. थोड़ी देर में लाउडस्पीकर फिट हो गये, जनता बैठने लगी. तब तक न जाने कहां से चिनिया-बदाम और चाटवाले भी खोमचा लेकर अपना अपना रोजगार करने आ गये थे. भाषण के लिए राधा बाबू के आने में थोड़ी देर हुई तो जनता इंतजारी से ऊबकर भम्भड़ करने लगी. तभी रंगा बाबू के इशारे पर मंच पर खड़े माइक के सामने लकदक सदरी-कुर्ता-पायजामा पहने खंजड़ी लिये हुए एक नवही आकर ताल दे-देकर पूर्वी तर्ज में गाने लगा कि,

"बाबा गांधी हो, कवने करनवा महंगी आइल जोर. . ."

तब राग के पहले ही उठान में एक बारगी सारी सभा मस्त हो गयी. लोग इस तरह मंत्र-मुग्ध होकर सुनने लगे कि जैसे इस जगत में यही एक सत्य, बाकी सब मिथ्या है और इस महंगाई और बेरोजगारी के लिए गांधी बाबा ही जिम्मेदार हों! पर पूरा गीत सुनने के बाद गोपाल को लगा कि महंगी को लेकर गांधी बाबा से केवल फरियाद की गयी है कि स्वतंत्रता के बाद मुनाफाखोरों ने किस कदर देश की अर्थव्यवस्था में गड़बड़ की, पर अब उनके दिन लद गये हैं.

गाना खत्म होते ही राधा बाबू मंच पर आ गये और माइक के पास खड़े होते ही उन्होंने अपना जोशिला भाषण शुरू कर दिया. भाषण खूब देर तक चलता रहा. शाम ढलने लगी थी. दिनभर खूब भाग-दौड़ की. इसलिए थोड़ी देर और सुनते रहने के बाद गोपाल थकान महसूस करने लगा था.

▣

दोपहर गर्मी के दिनों में घर में कुछ देर से खाना-पीना होता था. खा-पीकर गोपाल की माई पंखा झलते-झलते औंघा गयी थीं. तभी मुंशीजी कुछ तमतमाये हुए कचहरी से आये. आते ही उन्होंने लाल कपड़े में बंधा बस्ता सिरहाने पटका तो गोपाल की माई चौंककर उठ गयी और पास रखा ताड़ का पंखा उठाकर जल्दी-जल्दी उन्हें झलने लगी थीं. मूंशीजी ने सामने की जेब से निकालकर उन्हें कुछ नोट और रेजगारी दी. फिर खट्टे पसीने से लथपथ अपनी काली शेरवानी और मटमैला पायजामा खूंटी पर टांग दिया. चेकदार लुंगी लपेटी और फिर खड़ाऊं पहनकर गुसलखाना चले गये. गुसलखाना के दरवाजे का दोनों पट्टा खुला हुआ था. मुंशीजी ने एक बार बाहर झांका, फिर बनिआइन निकालकर नल के नीचे डाल दिया. नल की चूड़ी घिसी हुई थी. पानी एकरसता में बह रहा था. उन्होंने खूब मल-मलकर हाथ-मुंह पोंछा और चौकी पर बैठ पैर की एक-एक उंगली का पोर पोंछते हुए पत्नी की ओर मुखातिब होकर बतियाने लगे.

गोपाल की माई लालटेन का शीशा साफकर बत्ती का गुल काटती हुई बीच-बीच में हां हूं भी करती जाती थी. तभी गोपाल दबे पांव बाहर से आया. उसने झांककर माई-बाबू को देखा और अपने कमरे में जाने के लिए सीढ़ियां चढ़ने लगा.

मुंशी जी ने खखारकर अपनी दबदबाहटभरी आवाज में पुकारा, "गोपाल. . ."

उसने महसूसा कि बाबूजी कि आवाज़ आज कुछ बदली हुई है. उसका कलेजा धक् से हो गया. पहले तो वह सहमा फिर डरते-डरते वह उनके सामने आकर खड़ा हो गया.

बाबू उसे देखते ही बरस पड़े, "तू स्कूल से भागकर जुलूस में जाने लगा है."

गोपाल चुप था.

"तू मोदिआइन को मुंह बिराता और लोगों को गाली देता है."

गोपाल फिर भी चुप रहा तो मुंशीजी ने इस चुप्पी को तोड़ा, "तू लंठ होता जा रहा है. कपिल को धक्के देकर अपना जोर दिखाता है. उसके हाथ की हड्डी टूट जाती तो ..." और इस तो के साथ ही उन्होंने अपनी खड़ाऊं उठाकर उसकी पीठ पर इस तरह ज़ोर से दे मारी कि चोट सह न सकने के कारण गोपाल घुटने के बल गिर पड़ा.

फिर गोपाल पर बेभाव की पड़ने लगी, "अभी से नेता की दुम होता जा रहा है. सबक याद होता नहीं, जुलूस निकालेंगे, नारे लगायेंगे. साले अपनी सूरत देखी है. तुम्हारे सात पुश्त में भी किसी ने इस तरह नेतागीरी की है!"

सौ वक्ता न एक चुप. दहशत थी इसीलिए वह एकदम चुप रहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माई ने हिम्मत करके एक-दो बार बीच-बचाव भी करना चाहा, पर एक जबरदस्त झटका खा जाने के बाद अपनी विवशता में वह रोने लगी थी.

शोरगुल सुनकर मोदिआइन अपनी दूकान छोड़ लाठी टेकती हुई वहां पहुंची तो मुंशीजी को ही बोलने लगी, "बड़ा हत्यार वा इ मुंशी. इ त गोपला के जान मार दी." मोदिआइन ने मुंशी का हाथ तेजी से झटक दिया था.

मुंशी मोदिआइन की बात सुनकर भी कुछ नहीं बोले. कहीं न कहीं रुकावट तो थी ही. वे गुस्से में कोई दूसरा विकल्प न देख पाने के बहाने चुपचाप गुसलखाने में चले गये तो हल्दी और मुसब्बर पीसकर पीठ पर लगाते समय भी गोपाल की माई की आंखें नम थीं और हाथ कांपता रहा था.

मोदिआइन ने एक-दो बात और कही, पर मुंशीजी ने मोदिआइन की किसी बात का जवाब नहीं दिया. मुंशीजी का लेहाज भी ऐसे नहीं था. मोदिआइन इनके चचेरे भाई की रखैल थी. अपने मालिक के इस दुनिया से उठ जाने पर भी इसकी आंखों का पानी सूखा न था. मोदिआइन भी मुंशीजी को अपना देवर मानती और वक्त जरूरत ब्याज पर रुपये का भी इंतजाम कर देती थी.

अब भी मुंशीजी को मोदिआइन की ढेर सारी पुरानी बातें नहीं भूली थीं.

बातें याद आते ही मोदिआइन की जवानी, उसके जूड़े में लिपटी बेले की माला की तरह गम-गमकर महकने लगती थी. तब मोदिआइन चौड़े पाड़ की साड़ी पहनती थी. नाक में नकबेसर, बांह में पहुंची और चिकने-चिकने पैरों में पायजेब पहने सामने रखे पनबट्टे से लगा पान का बीड़ा गाल में दबाकर दूकान में मचिया पर इस तरह बैठती कि लोग उसे देखते ही रह जाते. पर अब इस उम्र में भी ज़बान इतनी तेज़ कि क्या मजाल कोई आंख दबाकर इस गली से निकल जाये. सिर्फ मुंशीजी ही रिश्ते की नजाकत से कुछ छूट पा गये थे. इसी से कचहरी जाते समय मोदिआइन उन्हें नित अपने हाथ से एक बीड़ा पान खिलाती तब ये भी कुछ न कुछ ठिठोली कर लिया करते थे.

नल का पानी जिस तरह उन्हें भिगोता जा रहा था, उन्हें याद आया कि एक दिन कचहरी जाते समय चौखट पर खड़े कई-कई चंगेलियों में सतुआ के अलावा चूरा, मटर आदि देख धीरे से उन्होंने पूछा था, "आखिर का का बेचतारू भउजी"

"तोहरा के चाहीं का?"

"जौन चाहीं उ कहां मिलेला."

"अइसन कह-कह के पछता मत, हेने आव हेने." और मोदिआइन की तबकी मुंह बिचकाकर हाथ मटकाने की अदा याद आते ही मुंशीजी नहाते-नहाते दीवार की ओर मुंह किये हुए मन ही मन हंसने लगे थे. नल की टोंटी का पेंच ढीला होने के कारण पानी अपनी एकरसता में हद-हदद-हदद-हद कर गिरता जा रहा था.

इधर आंगन में शांति होते ही माई गोपाल का हाथ पकड़ खींचते हुए उसे उसके ऊपर वाले कमरे में ले गयीं और ठंडा तेल मंगाकर माथे पर खूब अच्छी तरह मालिश करने लगी थीं.

मुंशीजी फारिग हुए तो उन्होंने आंगन से ही जोर की आवाज लगायी, "गोपाल की मां . . . अरे ओ गोपाल की मां. . . ." और आवाज़ सुनते ही मुंशीआइन जल्दी-जल्दी सीढ़ियां उतरने लगी थीं.

शाम ढलने के साथ ही साथ चेहरे की बारीकियां अस्तित्व-हीन होने लगी थीं. पड़ोस के कुत्ते भौंककर डरावनी आवाज में अपनी उपस्थिति का एहसास करा देते थे. घर में पूरी तरह शांति थी. मुंशीजी आंगन में अनार के पेड़ के नीचे खटिया डालकर चारखाने की लुंगी लगाये हुए थे. माई पंखा झला रही थीं. वे चिंतित मुद्रा में कुछ बतिया रहे थे, पर पूरी बात साफ-साफ सुनायी नहीं पड़ती थी. बात सुनते-सुनते गोपाल की मां बीच-बीच में अपनी आंखें पोंछ लेती थीं तो उसे लगा कि उसी की बातें हो रही हैं.

अब मुंशीजी ठुड्डी पर उंगली रखे अपनी छोटी-छोटी आंखों से भावशून्य बने आसमान ताक रहे थे जैसे लड़का नहीं गाय मारने के बाद मन ही मन बार-बार पछता रहे हों.

कई बार माई के बुलाने पर भी रोज की तरह गोपाल खाना खाने नीचे चौके में नहीं गया तो माई लालटेन जलाकर थरिया में दाल-भात और आलू का चोखा ऊपर ही ले आयी और अपने हाथ से ही सानकर खिलाया-पिलाया. फिर देर तक उसे समझाती रही कि सहसा पिछवाड़े ज़ोर का शोरगुल होने लगा था. सभी लोग घबराकर सकते में आ गये. कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि बात क्या है. तभी लाठी टेकती हुई मोदिआइन, 'गोपाल की मां, अरी ओ गोपाल की मां' कहती हुई भीतर आ गयी. उसका मन यह बताने के लिए बेचैन था कि दिन के जुलूस के प्रभाव में आकर पुलिस ने अपना काम शुरू कर दिया है. उसने सुखुआ महाजन के घर गोदाम पर एक साथ छापा मारा और सैकड़ों टिन बनस्पति, साबुन की बट्टियां और केरोसिन तेल बरामद किया. मोदिआइन ने बताया कि सुखुआ महाजन की घर से ही गिरफ्तारी हुई, हाथ में हथकड़ी और कमर में रस्सा बांधकर पुलिस थाने ले गयी तो उसकी क्या इज्जत आबरू रही. . . कहते हुए हथेलियों से अपना सिर पीटती हुई मोदिआइन बड़े आश्वस्त मुद्राओं में आंखें नचाकर सब बताती रही तो गोपाल कुछ नहीं बोला.

मोदिआइन को चाय देने माई के नीचे चले जाने के बाद गोपाल चुपचाप लेट गया और सोने की कोशिश करने लगा था, पर आधी रात तक उसे नींद नहीं आयी तो वह बेचैनी का अनुभव करने लगा था. थोड़ी देर बाद उसे किसी के आने की आहट मिली.

गोपाल चुपचाप सोया रहा. मुंशीजी ने दबे पांव सीढ़ी से ही झांककर गोपाल के कमरे में देखा, फिर उसे सोता जान तेज़ जलते लालटेन को कम कर दिया था.

उसे गहरी नींद में सोया जानकर वात्सल्य भाव से धीरे-धीरे उसके सिर के बाल इस तरह सहलाते रहे कि उसकी नींद न खुल जाए. वे अपने किये पर पछता रहे थे और उनका जी मन ही मन कचोट रहा था. तभी बाल सहलाते-सहलाते अचानक उनका हाथ गोपाल के ललाट से छू गया तो वे एकदम चिहुंक गये. फिर उन्होंने उसका पेट देखा, पैर टोया, हाथ देखा और बारजे पर आकर रेलिंग के सहारे जरा नीचे झांक घबराये से गोपाल की मां को बुलाने के लिए आवाज़ देने लगे थे. माई जल्दी-जल्दी सीढ़ियां चढ़ती आयीं और इतने तेज बुखार में दप दप जलते गोपाल को टोकर बुरी तरह घबरा गयी थीं.

तेज़ बुखार के कारण गोपाल का जी अपने में डूबने लगा था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मुझे तो अपने मुन्ने के लिए सम्पूर्ण स्वास्थ्यप्रद पेय ही चाहिए।"

कॉम्प्लान®

सबके के लिए आवश्यक २३ पोषक तत्त्वों वाला एकमात्र सम्पूर्ण स्वास्थ्यप्रद पेय।

केवल कॉम्प्लान में ही वैज्ञानिक ढंग से सुनियोजित अनुपात में प्रोटीन, कारबोहाइड्रेट्स, खनिज तत्त्व, विटामिन और अन्य पोषक तत्त्व हैं जिनकी हर किसी को हर रोज़ ज़रूरत रहती है। जो बच्चे खाने में आनाकानी करते हों उनके लिए तो यह आदर्श आहार है। उन पतियों के लिए भी जो काम की भागादौड़ी में ठीक से खा न पाते हों। और घर में उन बुज़ुर्गों के लिए जो तबीयत की नरमी के कारण खा न पाएँ। आपके लिए भी, जब थकान के मारे खाया न जाता हो।

याद रहे, डॉक्टर पूर्ण पौष्टिकता के लिए सबसे ज़्यादा कॉम्प्लान की ही सिफ़ारिश करते हैं।

कॉम्प्लान सादा और कई स्वादिष्ट ज़ायकों में मिलता है जिनमें हैं चॉकलेट, इलायची-केसर और अब बच्चों का प्यारा स्ट्रॉबेरी कॉम्प्लान।

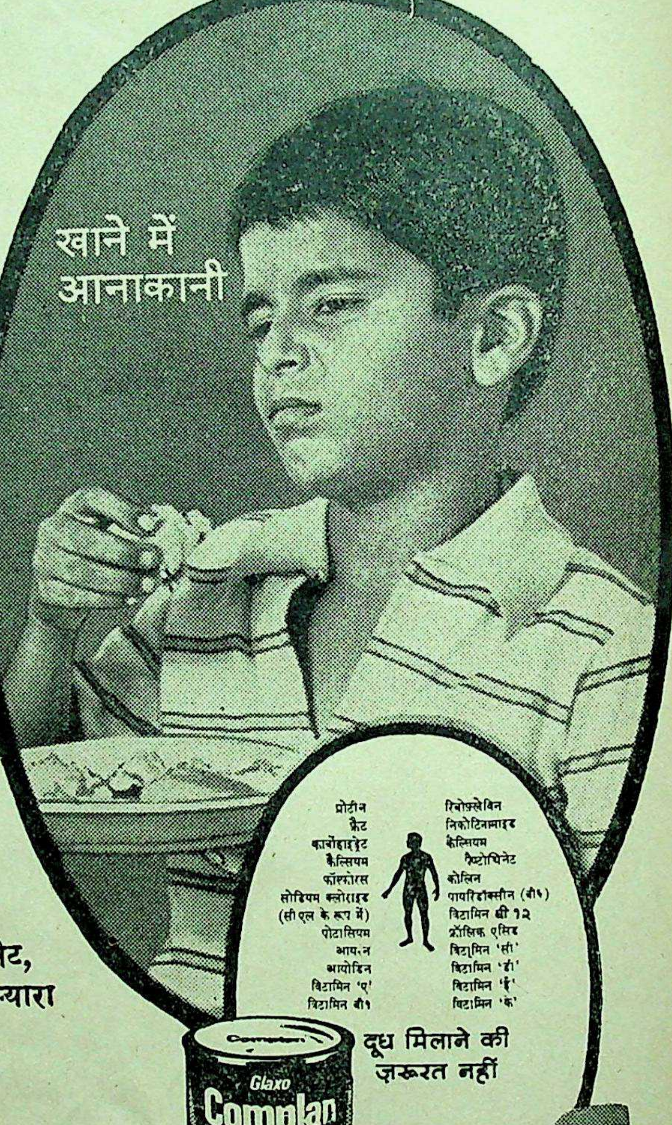

सम्पूर्ण

कॉम्प्लान सम्पूर्ण स्वास्थ्यप्रद पेय

CASGC-45-172 HIN

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अयोध्या से वापसी

▪ मेहरुन्निसा परवेज

स्नान के लिए हाथ में कपड़े लिए बाथरूम की ओर वह जा रही थी कि अचानक ऊपर की सीढ़ियों पर ठिठक गयी. सामने भीड़ लगी थी. हॉस्टल की कुछ लड़कियां एक घोंसले को बाहर फेंकने में लगी थीं. घोंसला काफी बड़ा-सा था, जिसमें नन्हे-नन्हे कई अंडे रखे थे, जो घोंसले के नीचे गिर जाने के कारण फूट गये थे.

लड़कियों के लिए अच्छा-खासा मनोरंजन हो गया था. एक परेशान चिड़िया बड़ी ही बेचैनी से दीवार पर भटकती उड़ रही थी. कभी एक दरवाजे पर बैठ जाती, कभी वह खिड़की पर बैठ जाती, कभी यूं ही दीवारों के चक्कर लगाती, फिर बैठकर गिरे हुए घोंसले, फूटे हुए अंडों को निहारने लगती.

घोंसला शायद तस्वीर के पीछे था जो थोड़ी-सी असावधानी के कारण नीचे गिर गया था.

सीढ़ियों के हत्थे को पकड़े उसका मन इन्हीं फूटे अंडों की तरह तड़क गया था. हॉस्टल का नौकर आया, वह घोंसले को बेदर्दी से उठाकर बाहर कचरे में फेंक आया. लड़कियां हंसती-खिलखिलाती अपने-अपने कमरे में चली गयीं. चिड़िया अब भी व्याकुलता से तड़पकर अपने घोंसले के लिए, अंडों के लिए विलापकर चीख रही थी.

वह पोर्च में आ गयी. शाम की ठंडी बयार बह रही थी.

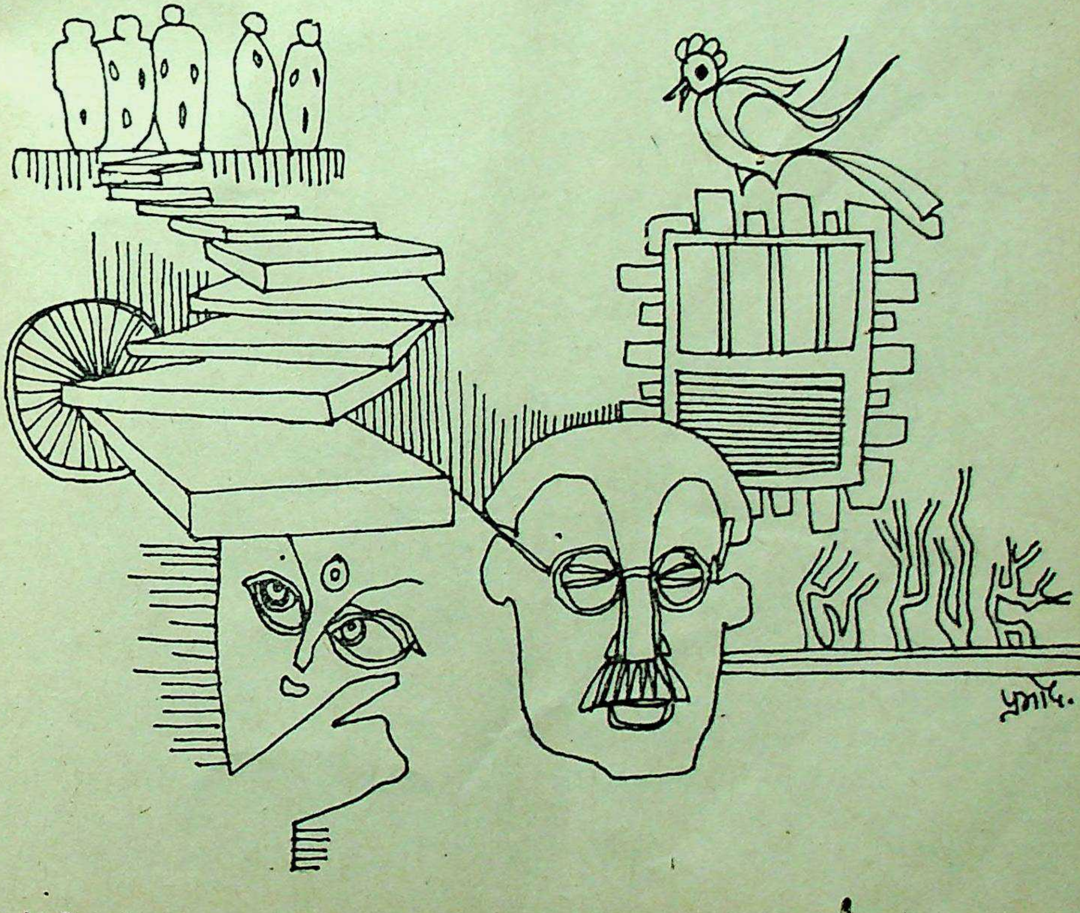

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिल्ली की इस भीड़ के सैलाब में, चमक-दमक में उसे बस शाम की यह ठंडी बयार ही भली लगती थी. इस अजनबियों के शहर में, अजनबी लोगों की भीड़ में जब से वह आयी थी, उसने अपनी पहचान भी खो दी थी. वह कौन है? कहां से आयी है? सारे प्रश्न धुंधले हो गये थे, पर अचानक इस बेघर हुई चिड़िया ने अपने पंजों से उसके जख्मों को और. . . और कुरेद दिया था!

▣

मौहल्ले के सूनेपन में रिक्शे के घुंघरुओं के बोल दूर-दूर तक गूंज रहे थे. लंबे अरसे के बाद उसी पहचाने मौहल्ले में अपने को पा उसे विचित्र लग रहा था. उसने मन ही मन सोचा, अच्छा हुआ रात का अंधेरा था, वरना अभी सारा मौहल्ला इकट्ठा हो जाता. सोचते ही घबराहट में उसके माथे पर पसीना झलक आया. उसने दो-तीन मरतबा मुड़-मुड़कर जाने-पहचाने पड़ोसियों के दरवाजे को देखा. इस आशंका से कि कहीं वह खुले न हों!

बाबूजी ने आगे बढ़कर घंटी बजायी. जानी-पहचानी घंटी की आवाज़ कमरे में टनटना उठी. किसी के उठने, फिर चप्पल घसीट कर इधर आने की आहट मिली. झटके से दरवाजा खुला और सामने राजेंद्र खड़े थे.

राजेंद्र अचकचाकर एक तरफ हो गये. वह अपनी अटैची उठाकर तेज़ी से अंदर हो गयी. उसने एक बार भी आंख उठा कर राजेंद्र को नहीं देखा.

उसने कमरे में अटैची रख दी और घूम-घूम कर सारे घर को देखने लगी. सारा घर बेतरतीब-सा बिखरा, धूल में सना पड़ा था. दीवार पर अपनी तस्वीर उलटी टंगी देख उसका मन दुःखी हो गया. अपनी उलटी तस्वीर देख उसे धक्का-सा लगा तो राजेंद्र ने उसे मरा हुआ समझ लिया था? उसने झट स्टूल पर चढ़कर तस्वीर सीधी की और अपने आंचल से धूल साफ कर दी.

बाहर बरामदे में ही बाबूजी और राजेंद्र बैठे बातें कर रहे थे. राजेंद्र बहुत ही संतुलित शब्दों में बाबूजी से बात कर रहा था. पुरानी बातों की जरा भी कड़वाहट नहीं थी शब्दों में.

मां ने टिफिन में काफी खाने का सामान रख दिया था. रास्ते में भूख ही नहीं लगी थी, इसलिये सारा खाना वैसा ही रखा था. उसे तुरंत कुछ नहीं बनाना पड़ा. उसने उसी खाने को गरम कर टेबल पर लगा दिया और बाबूजी को खबर दे दी. बाबूजी मुंह हाथ धोकर राजेंद्र के साथ खाने बैठ गये.

"तुम भी खा लो नीरा". बाबूजी ने दो तीन बार कहा, पर उसने बात को टाल दिया.

बाबूजी और राजेंद्र खाकर उठ गये तो उसने टिफिन बंद कर रख दिया. उसे भूख थी नहीं.

रात काफी हो गयी थी. बाबूजी ड्राइंगरूम वाले तख्त पर ही लेट गये. वह अपने कमरे में चली गयी. राजेंद्र ऊपर अपने कमरे में चले गये.

सुबह उठकर उसने बाहर का दरवाज़ा खोला और खिड़कियों के परदे खींच दिये. ढेर सारा उजाला कमरे में बिखर गया.

"नीरा". वह पलटी ही थी कि बाबूजी ने आवाज़ दी. शायद बाबूजी काफी पहले से जाग गये थे.

"जी". वह उनके पास जाकर बैठ गयी.

"बेटा, रात तुम लोगों में कोई बात नहीं हुई?" बाबूजी ने उसके चेहरे को निहारते हुए पूछा.

उसका चेहरा शर्म से लाल हो गया. उसने कोई उत्तर नहीं दिया और सर झुकाये पैर के नाखूनों को देखती रही.

"आदमी क्या पढ़ लिख कर इतना अपने-अपने दायरे में बंध जाता है कि दायरे के तोड़ नहीं पाता? हम ही लोग ठीक थे, कैसा भी वातावरण हो पत्नी से बोल लेते हैं."

बाबूजी की बातों से उसे बड़ी परेशानी-सी हुई, तभी परदा हटा कर राजेंद्र आ गये. बाबूजी और वह दोनों सकपका से गये. कहीं राजेंद्र ने बातें सुन तो नहीं लीं? राजेंद्र ने भी दोनों के चेहरे देखा, जैसे कह रहे हों, "जानता हूं बाप-बेटी में क्या बातें हो रही थीं."

राजेंद्र सोफे पर बैठ गये, वह उठकर पीछे बरामदे में आ गयी.

▣

किचन में पारो आ गयी थी और अपना काम कर रही थी. पारो ने मुस्करा कर उसे नमस्ते की. उत्तर में वह हंस दी. पारो ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा और बोली, "अब मत जाना आप, बिन औरत के घर शमशान लगता है."

उसने उत्तर नहीं दिया बस मुस्करा कर रह गयी. आंगन में लगा केले का पेड़ जो उसने लगाया था, अब काफी बड़ा हो गया था. उसे देख उसने अंदाज़ा लगाया वाकई वह काफी दिन बाहर रही.

"चाय मैं बनाऊं या आप बनायेंगी." पारो उसके निकट आती बोली, क्योंकि उसे पता था उसे किसी के हाथ की चाय पसंद नहीं थी.

"क्यों इतने दिन तू बनाती थी, मुझे देखते ही जी चुरा रही है? मुझे भी तो बना कर खिला. देखूं कैसा बनाती थी."

"नहीं आप ही बनाइये, मेरे हाथ की चाय आप पसंद नहीं करेंगी". पारो झेंपती हुई बोली.

"अच्छा". कहती वह किचन में गयी. किचन में जाते ही उसे विचित्र-सा लगा. चाय नाश्ता बनाकर उसने ट्रे में लगा दिया और पारो को पकड़ा दिया.

"आपकी चाय"! ट्रे उठाकर भीतर जाते पारो आश्चर्य से बोली.

"यहीं ले लूंगी, तू ले जा."

पारो के भीतर जाते ही बाबूजी की आवाज़ आई, "नीरा चाय लो आकर."

"बाबूजी अभी ब्रश नहीं किया है". वह झूठ बोल गयी.

वह अपनी चाय ले कर बैठी ही थी कि ऊपर वालों की खिड़की खुली और भाभी जी ने नीचे झांका.

"नीरा आ गयी."

"नमस्ते भाभी जी, आप अच्छी थीं". उसने अपने चेहरे की घबराहट को छुपाते हुए पूछा.

"हम तो ठीक थे अपनी कहो, अब मत जाना, हम से झूठ कह कर गयी कि दो दिन में लौट आऊंगी और इतने दिन लगा दिये. मुझे तो रात को ही आवाज़ मिल गयी थी. इच्छा तो रात को ही हो रही थी तुमसे बात करने की, पर तुम्हारे भाई साहब ने मना कर दिया, बोले सुबह बोल लेना.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने कोई उत्तर नहीं दिया, बस मुस्करा कर रह गई.

"साड़ी तो बढ़िया पहन रखी है, मां ने दी होगी". मामी जी ने ऊपर से नीचे तक उसका आंख घुमाकर मुआयना किया. घबराहट से उसे पसीना आने लगा, तभी बाबूजी ने उसे आवाज दी और उसने चैन की सांस खींची और भीतर चली गई.

"तुमने चाय ली". बाबूजी ने पूछा

"अभी ले लूंगी".

"अभी कब?", बाबूजी ने पारो को आवाज दे कर उसकी चाय वहीं मंगवा ली. वह चाय पीते सामने दीवार को देखती रही.

बाहर कोई आया था शायद. राजेंद्र उठकर बाहर चले गये.

"सोचता हूं शाम की गाड़ी से चला जाऊं." बाबूजी ने पैर के एक्जीमे के घाव पर मलहम लगाते हुए कहा.

बाबूजी की बात से उसका चेहरा सफेद पड़ गया. उसकी समझ में कुछ नहीं आया कि क्या बोले.

"इतनी जल्दी".

"हां, उधर भी तो देखना है न, तुम्हें लाकर पहुंचा दिया मेरी ड्यूटी खत्म."

"नहीं, अभी आप रहिए आठ-दस दिन, आपने तो कहा था कि आप रहेंगे थोड़े दिन मेरे साथ, फिर यहां आकर इतनी जल्दी जाने का प्रस्ताव."

"अब जाऊंगा बेटा, तुम दोनों समझदार हो, पढ़े लिखे हो, अपने हालत खुद ठीक करो, मेरे रहने से तुम लोग और नहीं बोल पाओगे. मैंने राजेंद्र को समझा दिया है, वह पुरानी बातों की चर्चा नहीं करेगा ... और तुम्हें भी चाहिए अब पति जो कहे मान लेना चाहिए. औरत पति के घर ही अच्छी लगती है. अपने स्वाभिमान को लेकर कब तक जिंदा रहोगी? स्वाभिमान को कुचल दो, यह डंक जब तक रहेगा, तुम्हें डसता रहेगा. पत्नी का दरजा छोटा होता है. पति का बड़ा". बाबूजी बोले जा रहे थे और वह आश्चर्य में भरी उनके चेहरे को देख रही थी. बाबूजी का बात करने का ढंग कितना बदल गया है? क्या यह वही बाबूजी हैं जो सब के सामने जोर से बोले थे, "वह मेरी लड़की है, वह पति के पैर की जूती बनकर नहीं रह सकती. नीरा को रखना है तो राजेंद्र को उसे बराबरी का दरजा देना होगा." और आज अचानक बाबूजी का बदला हुआ लहजा सुनकर वह दंग थी. तो बाबूजी ने भी हालात के आगे घुटने टेक दिये? लड़की का बोझ उन्हें भी महसूस होने लगा?

वह बिना कुछ बोले चुप रही और चाय पीती रही. रोष से उसका मन भर गया था, पर वह कुछ नहीं बोली.

"तो मैं शाम को चला जाऊं." बाबूजी ने आहिस्ता से फिर पूछा.

"हां, चले जाईये." उसने एकदम सपाट शब्दों में कहा और खाली मग को वापस ट्रे में रख दिया. वह समझ गई थी बाबूजी का सहारा वह कब तक लेती रहेगी.

"नहीं, तू कहेगी तो रुक जाऊंगा" बाबूजी उसके बोलने के ढंग पर चौंक गये और सकपकाये से उसे निहारते रहे, फिर थोड़ा नरम पड़कर प्यार से बोले, "तो रुक जाऊं."

"रुक कर क्या करेंगे, नहीं अब मैं खुद देख लूंगी, आप जाइये, आखिर उधर भी तो देखना है न". उसने रोष में भरकर बाबूजी के शब्दों को ही दोहरा दिया.

"ठीक है जैसा तू कहे." बाबूजी सहमे से ऐसे बोले जैसे खुद अपने जाल में फंस गये हों.

▣

शाम की गाड़ी से बाबूजी लौट रहे थे. रिक्शे पर सामान रखा गया. सब पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गये उत्सुकता से. वह भी बस स्टैंड तक जाने को तैयार हो गई थी.

"आप भी जा रही हैं." जब वह बाबूजी के साथ रिक्शे पर बैठी, तो पड़ोस की मामी जी बोलीं.

"नहीं, बस स्टैंड तक छोड़ने जा रही हूं." उसने खीजे शब्दों में कहा.

वह जब से यहां आई थी, सब उसे विचित्र ढंग से देखते थे. जैसे किसी होने वाली घटना की बाट जोह रहे हों. सबको शायद इंतजार था कि उसके आते ही घर में झगड़ा होगा, चटपटे दृश्य देखने को मिलेंगे, पर इसके विपरीत वातावरण देखकर सब क्षण-क्षण प्रतीक्षा में थे कि अब कुछ होगा, अब कुछ होगा, पर सबके सपाट चेहरे देखकर सब आश्चर्य में थे.

बस छूटने में समय था. बाबूजी उन दोनों के सामने खड़े थे. वह दूर होटल में जलते चूल्हे को देख रही थी.

"देखो, दोनों पुरानी बातों को भूलकर फिर से नया जीवन शुरू करो". बाबूजी ने उपदेश देने के लहजे में कहा.

"मैं तो अपनी जगह सही हूं, नीरा को ही समझा दीजिए. पति के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह उसे आना चाहिए न". राजेंद्र ने कहा तो नीरा ने चमक कर राजेंद्र को देखा था.

वह तो आई ही थी सारी स्थितियों से समझौता करने, पर इस तरह बोल-बोल कर तो उसे उकसाया जा रहा था. लड़ने के लिये तैयार किया जा रहा था. राजेंद्र की आंखों में अभी भी उसके लिये परायापन था, यह उसकी आंखों और शब्दों से स्पष्ट था.

बाबूजी के बस में बैठते ही बस छूट गयी. बस के पीछे उड़ती धूल को क्षणभर को ताकती वह अकेली रह गयी.

दोनों रिक्शा-स्टैंड की ओर बढ़े. दोनों ने अलग-अलग रिक्शा किया और घर लौट आये. घर पर जब मामी जी ने झांककर दोनों को रिक्शे के पैसे देते देखा, तब उसे अपनी गलती का अहसास हुआ. दोनों अलग रिक्शे पर आये, अब इस पर टीका-टिप्पणी होगी.

▣

उसने महसूस किया, जीवन अब पहले से अधिक यातनापूर्ण हो गया था. पहले तो वह लोग लड़कर, एक दूसरे पर व्यंग्य कर ही मन का रोष निकाल लेते थे, पर अब वह दोनों एक दूसरे को कुछ नहीं कहते थे. इस तरह वातावरण ज्यादा गंभीर लगने लगा था. परायापन अधिक नंगा होकर दिखने लगा था.

क्या कभी-कभी ऐसा नहीं होता . . . हम सोचते हैं, हम जो जगह छोड़ आये हैं, वह सुरक्षित होगी. लौटने पर फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमें अपना सुरक्षित स्थान मिल जायेगा. इसी भ्रम में आदमी जानबूझ कर मौत के अंधेरे की ओर खिंचता चला जाता है. सच क्या है, फिर भी झूठ की छाया को थामे बैठने को जी चाहता है, खोई हुई मान-मर्यादा क्या फिर मिल सकती है?

वह अपनी आलमारी में सूटकेस से कपड़े निकाल रही थी. उसके पुराने कपड़े तुड़े-मुड़े से आलमारी में पड़े थे. उसने देखा आलमारी से उसकी नीले रंग की साड़ी गायब है. उसने महसूस कर लिया, साड़ी पारो ने गायब की होगी. बस यही सोचकर कि अब तो वह लौटेगी नहीं, जितनी चोरी करना है कर लो. वह आलमारी में कपड़े तह कर रख रही थी, इस बीच राजेंद्र दो बार कमरे में झांक गये यह देखने, कि वह क्या कर रही है? उसे घरेलू काम में व्यस्त देख काफी आश्वस्त से बाहर चले गये.

धीरे-धीरे उसने घर का कोना-कोना देखना, झटकना-पोंछना शुरू कर दिया. वह पहले की तरह ही अपने काम में व्यस्त हो गई थी. मनीप्लांट की बेल जो पूरी तरह सूखने चली थी उसे भी उसने ठीक किया. पके-सड़े पत्तों को बाहर फेंका और बेल को काटकर नये सिरे से रोप दिया बोतल में.

बाथरूम से वह नहाकर लौटी और गीले बालों को तौलिए से झटकती बाहर आई तो देखा, पारो ऊपर वालों के यहां से तेजी से उतर रही थी, यकायक उसे देख वह हड़बड़ा कर चौंक गयी.

"क्या बात है? ऊपर क्यों गई थी?"

"ऊपर वाली माता जी ने बुलाया था." वह सहमी सी बोली.

"क्यों?" उसने आश्चर्य से पूछा.

"जी, वह पूछ रही थीं कि तेरी बाई साहब से बोलती हैं या नहीं और साहब बाई से बोलते हैं या नहीं."

"अच्छा". उसका चेहरा सफेद पड़ने लगा. गले में कुछ फंसता सा लगा. ऐसा भी प्रश्न लोग कर सकते हैं, यह उसके लिए आश्चर्य की बात थी. फिर भी उसने अपने को संयत किया और बोली, "फिर तूने क्या कहा."

"मैंने तो साफ गप्प लगा दी बोली, "मियां-बीवी हैं, बोलेंगे नहीं?" पारो ने अपने शब्दों में ढेर सारा एहसान, उदारता लादते हुये आगे कहा, "मैंने तो कहा हमारी बाई साहब से नहीं बोलेंगी तो क्या आपके साहब से बोलेंगी".

अंत वाली बात झूठ थी. इतनी हिम्मत इसकी थोड़े हो सकती है. फिर भी वह चुप रही. चुप रह जाना ही बेहतर था. वह अपने कमरे में लौटने लगी तो नौकरानी आगे बोली, "वह यह भी बोल रही थी, "तेरी बाई तो जवान है, दूसरा आदमी बना लेती. पर साहब बेचारे क्या करते?"

"बस बहुत हुआ पारो, अपना काम कर तो." उसने उसकी बेतुकी बातों से ऊब कर कहा और भीतर चली गई. रोष से उसकी आंखें जलने लगीं. लोग कितने विचित्र हैं, नहीं आई थी तो चिंता थी, आ गई तो चिंता है. लोगों को कहीं भी चैन नहीं.

इन दिनों उसने अजीब बदलाव का एहसास अपने अंदर महसूस किया है. पहले मन क्रोध या उदासी में बोलने को होता था, पर अब चुप रहने को मन करता है. अजब सी निष्क्रियता घेरे रहती है. लगता है उसकी जगह कोई पत्थर चल-फिर रहा है. इस पर कितनी चोटें. . . .कितनी ही आवाज दी जाये यह वही

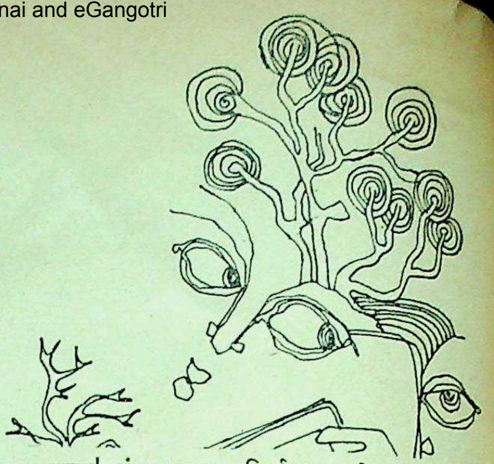

पत्थर का पत्थर! इंसान पत्थर सिर्फ बाहर से नहीं होता, भीतर से भी होता है. . . .अंदर का वज़न और-और दबाता है.

राजेंद्र के व्यवहार में उसने एक विचित्र सा परायापन देखा. अब वह हर बात में उसकी जांच-पड़ताल करता. बार-बार आकर देख जाता कि वह क्या कर रही है. याने उसकी सब गतिविधियों का वह बारीकी से निरीक्षण करता. वह घर पर आये किसी परिचित से बात करती तो वह उसे विचित्र ढंग से तकता, जिससे अंदर ही अंदर उसे घबराहट होने लगती थी. राजेंद्र के पहले और बाद के नेचर में साफ अंतर आ गया था. पहले वह मुंह से बोल कर गुस्सा निकाल लेता था, पर अब वह बोलता नहीं, बस उसे पारखी, ताड़ती, तौलती नज़र से उसका पीछा करता था, जिसके कारण वह अस्त-व्यस्त हो उठती थी. मन दु:ख से भारी हो उठता था. गुस्से से शब्द मुंह तक आते थे, पर वह कह नहीं पाती थी. दोनों को लगने लगा था कि दोनों एक दूसरे के लिए अजनबी, अनजान व्यक्ति हैं, जिनका एक दूसरे पर बोलने का हक नहीं बनता था.

▣

डायरियां लिखने की उसकी बचपन की आदत थी. बचपन से ही बाबूजी को लिखते देख उसने भी उनकी यह आदत चुपचाप से अपना ली थी. शुरू में यह बड़ों की नकल की तरह उसने अपनाया था, पर बाद में धीरे-धीरे यह उसकी आदत में शुमार हो गया था. उसकी इस आदत को राजेंद्र जानते थे, इसीलिए जब वह रसोई में या और कोई काम में व्यस्त होती, तो वह देखती उसकी डायरियों को पढ़ा गया है, जांच-पड़ताल की गई है. राजेंद्र के दिमाग में यह शक किसी ने बैठा दिया था, कि जो वह मायके चली गई थी, उसके पीछे कोई था जिससे वह बाद में शादी करती. इसी शक से भरकर उसकी सब गतिविधियों पर नजर रखी जा रही थी. यहां तक की जो उसके दोस्तों की चिट्ठियां आती थीं, उन्हें भी राजेंद्र चुप से पढ़ता, जैसे उन पत्रों में कोई सुराग ढूंढ रहा हो, किसी खजाने की खोज के लिए.

राजेंद्र की इन हरकतों से उसे हंसी आती थी. आदमी कभी-कभी अपने संबंधों को बचाने के लिए, बनाये रखने के लिये ऐसी हरकतें, ऐसी पहरेदारी करता है कि सबंध और टूटने लगते हैं. वह किसी से बात करती, मिलती तो वह बहुत ध्यान से उस पर नजर रखता. राजेंद्र, जो पहले निरंतर अपने काम में व्यस्त रहता था, अब निरंतर उसकी चौकीदारी में अपना समय नष्ट करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगा था. वह घर के किसी काम में व्यस्त रहती तो बार-बार झांक जाता कि वह क्या कर रही है. वह किसी दोस्त को पत्र लिखती तो वह बेचैनी से भरा कई-कई चक्कर लगाता, यदि वह अधूरा पत्र छोड़ किसी काम से बाहर चली जाती तो वह तुरंत पढ़ने लगता. अब वह भी राजेंद्र की इस हरकत से परिचित हो गई थी, इसलिये वह भी पत्र लिखते-लिखते जानबूझ कर उठकर चली जाती और काफी देर में लौटती, ताकि वह आराम से पत्र पढ़ ले. लौटकर देखती, राजेंद्र का परेशान चेहरा निश्चित हो गया है और वह आराम से अपने कमरे में बैठा पेपर पढ़ रहा है. पर तब वह खुद बेचैन हो उठती, उसका मन फिर पत्र लिखने में या डायरी लिखने में नहीं लगता. वह दोनों हाथों का टेबल पर रखे, सर को उस पर टेके बैठी रहती. न जाने कब तक वह ऐसे ही बैठी रहती...कभी-कभी तो घंटों गुजर जाते, तब वह चौंककर उठती और थकी, कटी डाल सी अपने पलंग पर ढह जाती.

राजेंद्र को पता चल गया था कि मायके में जब वह थी तो उन लोगों ने उसे कैसा तंग किया था, कितना अपमान किया था. उसे रहने नहीं दिया. अंत में तंग आकर राजेंद्र के घर लौटना उसने स्वीकार लिया था. अब तक राजेंद्र को यह भय था कि वह मायके जा सकती है, पर उसके मन से यह भय भी मिट गया था. अब वह पूरी तरह समझ गया था कि इस घर में रहने के अलावा उसके पास दूसरा दरवाजा नहीं, जो उसे दो इंच जगह भी रहने के लिए दे सके. इसलिये अब वह दिलेर हो उठा था. अब उसे परेशान करने, दुःख देने, अपमान करने में उसे मजा आने लगा था. राजेंद्र की आंखों में उसके लिये इतनी हिकारत, घृणा-सी भर गई थी कि वह परेशान हो उठती थी. राजेंद्र का घाघ दिन प्रतिदिन जहर उगलती नज़रें, उसके व्यक्तित्व को और खोखला कर देती थीं.

घर में पड़े-पड़े वह घुट सी गई थी. शाम को उसने सोचा थोड़ा घूम आये और जरूरी सामान भी ले आये. जब से वह पिता के घर से आई है, बाजार भी नहीं जा पाई है. वह टहलते हुए बाजार की तरफ चली गई. दुकान पर कुछ परिचित महिलाएं मिल गई और वह उनसे बात करने लगी. सामान खरीदने में समय हो गया. घर लौटी तो अंधेरा हो गया था. वह समझ गई राजेंद्र लौट आया होगा. घर पहुंचते ही उसने देखा राजेंद्र गुस्से से भरे बैठा था.

"कहां चली गई थीं तुम."

"सामान लेना था, दुकान में समय हो गया". उसने धीरे से सफाई दी.

"कौन सी दुकान गई थीं, जहां इतना समय हो गया?"

"तो अब मुझे यह भी बताना होगा." राजेंद्र का बोलने का ढंग उसे अच्छा नहीं लगा.

"हां"

"और यदि मैं न बताऊं तो." उसने दिलेरी से तन कर कहा. राजेंद्र गुस्से से भन्नाते हुए अपने कमरे में लौट गये.

वह चुपचाप अपने कमरे में जाकर पलंग पर लेट गई. अपमान से उसका मुंह लाल हो गया. तो राजेंद्र को शक है कि दुकान का कह कर कहीं और गई थी. इस त्रासदायक वातावरण में वह भला कैसे और कब तक जी पायेगी. जिंदगी में विश्वास ही कुल जमा पूंजी होती है और जब वही नहीं, तो कब तक जिया जा सकता है. अब ऐसे वातावरण को सहज बनाना कठिन था.

दोपहर को वह बालकनी में खड़ी थी कि उसने देखा, पीछे रहने वाली चंपाबाई जो अस्पताल में दाई का काम करती थी, उसकी वही नीले रंग की साड़ी पहन कर जा रही है. आश्चर्य से उसका मुंह खुला का खुला रह गया. उससे रहा नहीं गया, उसने आवाज दे कर चंपाबाई को रोक लिया. चंपाबाई झिझक कर उसके सामने आ खड़ी हुई.

"यह साड़ी तुम्हें कहां मिली, यह तो मेरी है".

"आपकी है? मगर मुझे क्या मालूम? आपकी नौकरानी इसे बेच गई है". चंपाबाई ने घबराहट में अपना जुर्म स्वीकार लिया.

"हां, तो तुम चोरी का माल खरीदती हो. तुम्हारी तो पुलिस में रिपोर्ट होनी चाहिये." उसे गुस्सा आ गया.

"हां, हां, करो पुलिस में रिपोर्ट." चंपाबाई भड़कते हुये अपना हाथ नचाते हुए बोली, "पुलिस मेरा क्या करेगी? बड़ी आई पुलिस का डर दिखाने वाली. ऐसे ही अपने घर के सामान की चिंता करने वाली थी, तो घर छोड़कर गई क्यों थी! अरे सब ऊपर से शरीफ दिखती हैं, भीतर से पोल हैं. और देखो रास्ता रोक कर कैसा टोका-टोकी कर रही हैं."

"देखो मुंह संभाल कर बोलो, बहुत मुंह चढ़ी जा रही हो!"

"हां, हां क्या कर लोगी? बड़ी साड़ी वाली आ गई." चंपाबाई जोर-जोर से बोलने लगी. आसपास के दरवाजे खुलने लगे थे. उसका गुस्सा बढ़ता जा रहा था, पर वह अपने गुस्से को पी गई. नीच के मुंह कौन लगे. उसे तो अब अपने आप पर गुस्सा आ रहा था, वह क्यों ऐसी औरत के मुंह लगी. वह भीतर आ गई.

उसने दरवाजा बंद कर लिया था, पर चंपाबाई सबको सुना सुना कर बक रही थी. उसने अपने कानों पर हाथ रख लिये. गुस्सा आंखों के रास्ते पिघल कर बहने लगा. चंपाबाई ने बीच बाजार में उसे नंगा कर दिया था, यह पीड़ा उसे चीर रही थी. पीड़ा से उसकी छाती दुखने लगी. वह दरवाजे खिड़कियां बंद कर सारी दोपहर मुरदे की तरह पड़ी रही.

जिंदगी वास्तव में कितनी विचित्र है, पता ही नहीं चलता. चलते-चलते जिंदगी किसी ओने-कोने में कैसी-कैसी गलियों से मुड़ जाती है. कभी लगता है सारे अधिकार हमारे हैं, सब पर हमारा अधिकार है और कभी अनायास यह एहसास होता है, नहीं हम एक झूठे भ्रम को पाले हुये थे. हमें सारे अधिकारों से वंचित कर दिया गया है. तिनके पर भी हमारा हक नहीं बनता. अचानक लगता है कि समय के दावेदार ने हमें दिवालिया घोषित कर दिया है. और मन के कोने, कोने से निकलकर एक एक, सुखों की बोली बोल दी है. सब कुछ कितना अनिश्चित सा.

उसने अपने आप को सहज बनाने में कोई कसर नहीं रखी. पुरानी बातों को दफन करना ही ठीक समझा. उन लड़ाइयों को लेकर जिंदा रहना भी तो मुश्किल हो जाता न. अब राजेंद्र को चाय देने से लेकर उसका बिस्तर लगाने का काम भी वह खुद करने लगी थी. राजेंद्र भी जैसे समझ गया था कि स्थिति सामान्य है, सारा तूफान उतर चुका है.

शाम को वह लाल रंग की जोधपुरी साड़ी में बाहर लॉन में आ बैठी. घास पर नन्हा खरगोश दौड़ रहा था. वह उसे दिन भर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताज़गी महसूस कीजिये सुबूत अपनी आँखों से देखिये

पानी से भरी तश्तरी में थोड़ा सा कोयले का चूरा छिड़किये। अब थोड़ा सा बिनाका टॉप पानी में मिला लीजिये और इस घोल की एक बूँद तश्तरी के बीचों-बीच टपकाइये। अब देखिये बिनाका टॉप कितनी तेज़ी से चारों तरफ फैलता है.... मैल को दूर करता है और पानी की सतह को बिल्कुल साफ़ कर देता है।

बिल्कुल इसी तरह बिनाका टॉप का विशेष फैलने वाला तत्व आपके मुँह के हर कोने में फैल कर दांतों में सड़न पैदा करनेवाले कीटाणुओं का नाश करता है और साँस की दुर्गन्ध को रोकता है। बिनाका टॉप आपके मुँह की पूरी रक्षा करते हुए उसे ताज़गी से भर देता है।

शिवा-गायत्री

बिनाका टॉप टूथपेस्ट

ARMS-CBT-1-78-HN

मुँह की पूरी रक्षा के लिए

पिंजड़े में बंद रखती थी और शाम थोड़ी देर के लिए खोलती थी, वरना वह कोने-कोने में जा छुपता था और उसे वापस बंद करने में दिक्कत होती.

राजेंद्र भी अपनी चाय लेकर स्टडी से इधर ही आ गये. उसने सर उठाकर राजेंद्र को देखा फिर वह खरगोश को देखने लगी. खरगोश नर्म-ठंडी दूब में अपना सर छुपाये खेल रहा था, लोट रहा था.

"नीरा, पिक्चर अच्छी लगी है चलोगी?" राजेंद्र ने पूछा.

"कौन सी है?"

"घर"

"यह तो मेरी देखी हुई है, बाबूजी के घर थी तब देख आई थी."

"और क्या, क्या करतीं थीं तुम वहां?" राजेंद्र ने तेज जहर बुझे लहजे में अचानक पूछा.

"क्या मतलब." राजेंद्र का इस तरह बोलना उसे खल गया, उसकी भवें तन गईं.

"मतलब क्या, मतलब साफ है इतने दिन तुम वहां रहीं किसी से दोस्ती तो हुई होगी. सुना है वहां काफी ज़ोर-शोर से तुम्हारी शादी की बातें आ रही थीं. तुम्हारे इतने आशिक होंगे, यह तो हमें भी पता नहीं था."

"देखो, जो कहना हो ढंग से कहो, इस तरह सस्ते मत कहो!" उसका चेहरा अपमान से लाल हो उठा, "शादी की बात आ रही थी, यह सब तुम्हारे मन का शक है."

"वह तो मेरा कानूनी डंडा बजा, तो तुम्हारा खूसट बेवकूफ बाप एक ही नोटिस में तुम्हें पहुंचा गया, वरना तुम तो शादी कर चुकी होतीं. सुना है बड़े कद्रदान तुम्हारे पैदा हो गये थे वहां."

"देखो, तमीज से बोलो." वह तमक कर खड़ी हो गई. "मेरे बाप को बुरा-भला कहा तो ठीक नहीं होगा. तुम्हारे मन में इतना ढेर सारा मेरे लिए शक है यह आज पता चला. मुझे पहले ही पता था यहां लौटने पर मुझे क्षण क्षण अपमान मिलेगा. पर बाबूजी के, मां के आगे मैं हार गई. किसी भी युग में झगड़े के बाद पति के घर लौटने पर नारी को सम्मान नहीं मिला. सीता का भी अयोध्या लौटने पर अपमान हुआ था, पर इससे पहले कि राम की तरह अंधे हो कर तुम मुझे निकालो, मैं खुद तुम्हारी अयोध्या त्याग कर जा रही हूं, अब कभी न लौटने के लिए."

राजेंद्र अचकचा कर उसे निहारने लगे. वह सहमे से उसे देखने लगे. वह तेज-तेज आगे बढ़ गई.

"नीरा, सुनो तो. . . ." राजेंद्र ने उसे आवाज दी, पर वह भीड़ से भरी सड़क पर उतर चुकी थी.

हॉस्टल की सारी लाइट जल गई थी. बेतहाशा कुमकुमों से जगमगाती दिल्ली शहर रात के अंधेरे में बेहद हसीन हो गया था. उसने पोर्च पर आकर कचरे के टीन को देखना चाहा, जहां चिड़िया का घोंसला फेंका गया था, पर वहां ढेर सारा अंधेरा होने के कारण उसे कुछ नज़र नहीं आया. चिड़िया अभी भी अंधेरे में छटपटा रही थी. जहां इतनी रोशनी थी, वहां ऐसी भी जगह थी, जिसे अंधेरा निगल गया था! □

● द्वारा श्री भगीरथ प्रसाद, एस. डी. एम. डबरा, ग्वालियर. (म. प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुष्प चरित उर्फ मेरे पहले प्रेम प्रसंग

• रवींद्रनाथ त्यागी

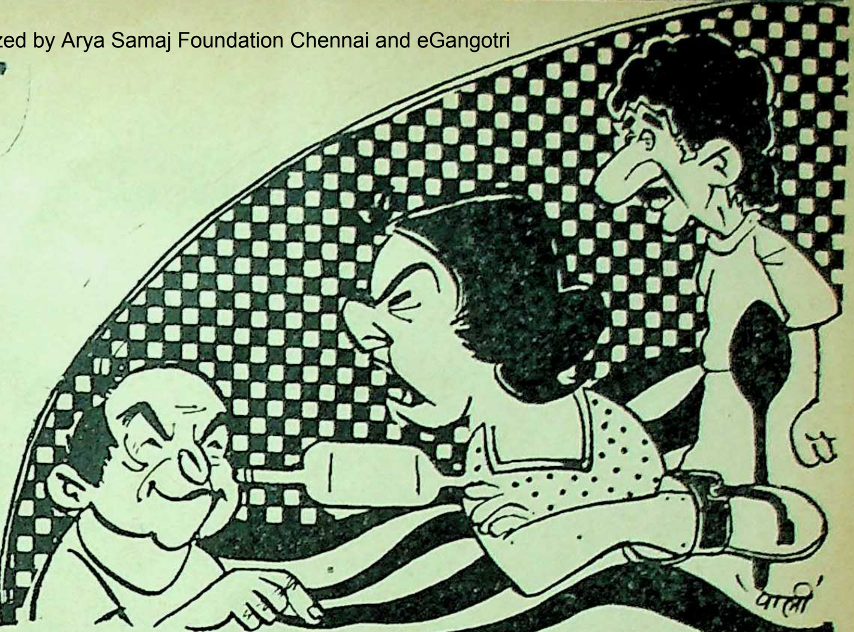

रह गया पीछे
नगर, घर, द्वार
सब कुछ रह गया पीछे :
आओ ये चिह्न गिनें
कहें सूख गयी नदी की कथा.

ओम प्रभाकर का काव्यग्रंथ 'पुष्प-चरित' क्या पढ़ा कि मुझे अपने प्रेम-प्रसंग याद आने लगे. प्रेम-प्रसंगों के मामले में हालांकि मैं अभी तक पिटा नहीं हूं, मगर वैसे काफी उदारमना रहा हूं. ईश्वर की बनायी स्त्री जाति से प्रेम न करना, ईश्वर के प्रति अनादर होगा—ऐसा मेरा अटूट विश्वास रहा है. मगर ईश्वर ने इस संदर्भ में दो गलतियां कीं. एक तो यह कि सौंदर्य को इतनी मात्रा में जन्म दिया कि समझ में नहीं आता कि इंसान किस-किस से प्रेम करे, और दूसरी गलती यह कि पता नहीं यों लड़कियों को काफी संगदिल बनाया है. कवि के शब्दों में ये दोनों स्थितियां इस प्रकार बयान की जा सकती हैं:

इलाही कैसी-कैसी सूरतें तूने बनायी हैं,
कि हर सूरत कलेजे से लगा लेने के काबिल है.
(अकबर)

लगा न दिल को कहीं, क्या सुना नहीं तूने,
जो कुछ कि मीर का इस आशिकी ने हाल किया.
(मीर)

मेरे प्रेम-प्रसंगों की कथा 'प्रेमसागर' की भांति काफी लंबी है. जहां तक मुझे याद पड़ता है, पैदा होते ही मैंने एक ऐसी स्त्री से मुहब्बत करनी शुरू कर दी थी जो कि पहले से ही विवाहित थी. वह मेरी मां थी. यानी की मेरे मरहूम पिता की पत्नी. यह मुहब्बत इतनी सच्ची निकली कि उम्रभर चलती रही और कोई खास बदनामी भी नहीं हुई. मगर इस इकलौती मुहब्बत के अलावा खाकसार ने जहां कहीं भी इश्क किया, वहां प्रायः निराशा ही हाथ लगी.

मेरा दूसरा इश्क एक ऐसी लड़की से हुआ जो वैसे तो गरीब थी, मगर खूबसूरती के मामले में जरूरत से ज्यादा अमीर थी. उन दिनों खाकसार कोई सोलह-सतरह साल का रहा होगा और वह थी कोई चौदह-पंद्रह साल की. फटे कपड़ों में वह ठीक ऐसी लगती थी जैसी कि क्लियोपेट्रा. इतिहास के छात्रों को पता होगा कि क्लियोपेट्रा को जब सीजर के सामने पहली बार पेश किया गया था तो निहायत गलीज कपड़ों में ही किया गया था. मगर यहां तकदीर ने हमारा साथ नहीं दिया. बाधा क्रमसंख्या एक तो यह थी कि वह इतनी भोली थी कि प्रेम के ढाई अक्षर भी समझने को तैयार न थी. कवि के शब्दों में मैंने उससे न जाने कितनी बार कहा कि 'उठो सुहागन चांद ढल गया' या 'री सुहागन, कुसुम ऋतु छायी बागन-बागन', मगर उस पर कोई असर ही नहीं पड़ा. ऐसी डल लड़की को तो 'डल झील' में ही फेंक देना चाहिए. बाधा क्रमसंख्या दो यह थी कि जिन हजरत के यहां वह लड़की काम करती थी, उनकी अपनी निगाह भी उस पर थी, ऐसी स्थिति में हमने वही किया जो कवि ने आज्ञा दी थी :

चलो, अब तो यहां से भी चलें
अब तो पहाड़ी के उस पार
बूढ़ा सूर्य बनकर ढलें,
चलें अब तो बंद कमरे में
सुलगती लकड़ियों से जलें

इस हादसे के बाद हमने अपने दिल की दस्तावेज एक ऐसी कन्या के सामने प्रस्तुत की जो हमारे ही मुहल्ले की थी, जिसे हम बाकी पब्लिक के सामने 'बहन' कहकर पुकारते थे. वह प्यार के सहारे दोस्ती तक पहुंचना चाहती थी और हम थे कि दोस्ती के सहारे प्यार तक पहुंचना चाहते थे. प्रेम के क्षेत्र में उतनी अनुभवी कन्या हमें फिर नहीं मिली. जहां पहली लड़की हमारे मनोभाव नहीं पहचानती थी, वहां इससे हम इस दिशा में पीछे पड़ते थे. बड़ी चौकस छोकरी थी. 'क्वांरी मत समझो, मैं ब्याही हूं नंदलाल' टाइप. इसने हमें विरह और मिलन का अंतर समझाया, बुलाने के इशारे समझाये,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेम का वक्त बतलाया और बाकी हिदायतें भी दीं. बुंदेलखंड का यह फाग इस पर पूरी तरह फिट बैठता था :

नयी गोरी, नये बालमा, नयी होरी की झांक

ऐसी होरी दागियो, जो कुल को न आवै आंच

सम्हरि के यारि करो मोरे बालमा

लड़की वैसे सच्ची थी. शादी के बाद भी, जबकि उसके बच्चे मुझे सार्वजनिक तौर पर मामा कहकर पुकारते थे. वह जब अकेले में मिलती थी तो स्थिति यही रहती थी कि :

पीपर पत्ता चीकनै, दिल चिलकैं औ रात

यारी बालापने की खटकत है दिन रात

लगी को कौन बिसारै मोरे बालमा

इस बालिका की शादी के कुछ वर्ष उपरांत हमारा तबादला हो गया और हम इंटरमिडिएट की परीक्षा के लिए एक और कस्बे में चले गये. वहां एक भाभी जी मिलीं, जिन्होंने हमें पहली बार अश्लील चित्र दिखलाये और यह भी बताया कि उनमें अश्लील जो था वह क्या था. हम समझ गये और कवि शब्दों में :

वह तट भी छोड़ चले,
ऐसे में क्या करते निरुपाय
रथ ही तोड़ चले

▣

इसके बाद प्रेम का प्रथम सच्चा अनुभव तब हुआ जब हमने एक लड़की का ट्यूशन शुरू किया. इतनी सुंदर लड़की मैंने फिर कभी नहीं देखी. मैं उसे क्या पढ़ाता था, वह ही मुझे पढ़ाती थी :

थके चेहरे
झुके माथे
भरी आंखें
ढले कांधे
चटकती हिचकियों में थरथराते नाम
ताल के ठहरे हुए जल में सिसकती शाम

बड़ी प्यारी लड़की थी. बस दिक्कत थी तो यह कि अकेले बहुत कम प्राप्त होती थी. जितनी देर भी वह साथ रहती थी, घर का कोई और सदस्य भी वहीं बैठा रहता था. एक वर्ष के निरंतर सहवास में मैं उसका हाथ केवल एक बार छू पाया था. पवित्र प्रेम की ठीक वही स्थिति जो एक कवि ने कभी इस प्रकार बयान की थी :

उश्शाक़ कहीं खींच न ले टांग पकड़ कर

इस खौफ़ से माशूक लबे बाम न आया

(जरीफ़)

खैर वह बेचारी तो पल्ले नहीं पड़ी, मगर उनकी विधवा माता मेरे पीछे बुरी तरह पंजे झाड़कर पड़ गयीं. मैं उनकी पुत्री से प्रेम करता था और वह मुझसे इश्क करती थीं. उनकी उम्र कोई पैंतीस वर्ष के लगभग रही होगी और सिवाय इसके कि उनके चाहने वाले काफी थे, उनमें और कोई कमी नज़र नहीं आती थी. अलबत्ता, चाहने वाले उनके इतने थे कि न जाने कितने शायरों का कलाम एक साथ याद आता था :

बीसियों चाहने वालों की ज़रूरत क्या है

नाज़ उठवाओगे तुम उनसे कि छप्पर कोई?

(बेढब)

हुजूमे आशिकी देखा जो दरवाज़े पै, वे बोले

हमें ये टीम कुछ आल इंडिया मालूम होती है

(जरीफ़)

▣

माशाअल्लाह, किसी तरह मैं उस चक्रव्यूह से निकला. इसके बाद मेरा अंतिम प्रेम विश्वविद्यालय में हुआ जो मेरी कायरता के कारण शादी का रूप न ले सका. शादी हो जाती तो शायद बच्चे भी हो जाते. बड़ी भली लड़की थी. मंझला कद, सांवला रंग, पतले होंठ और बड़ी-बड़ी आंखें. ज्यादा कुछ कहने के बजाय बेहतर होगा कि ओम प्रभाकर की कुछ पंक्तियां उद्धृत कर दूं :

किसने धोये केश
प्राण तक गमक उठे?
कोई आकर बैठ गया बिल्कुल पास है
जा न सकूंगा कहीं और अब मैं हट के
तनक झुके ये अधर
तनक वे अधर उठे

किसने बाले दीप
अंधेरे चमक उठे?

▣

सरकारी तौर पर मेरा यह अंतिम प्रणय था. इसके बाद मेरी शादी हो गयी. शादी के बाद प्यार-व्यार कुछ नहीं होता. गम और भी हैं ज़माने में मुहब्बत के सिवा. हां अलबत्ता, कभी-कभी पुरानी आदत लौट आती है, मगर वह दीगर बात है. पिछली बार अस्पताल में भर्ती हुआ तो दो नर्सें दोनों नयनों में हमेशा के लिए समा गयीं. एक को खड़ी खाने का शौक था तो दूसरी को अंगड़ाई लेने का. कवि के शब्दों में कुल मिलाकर स्थिति यह रही कि जब मैं चला तो ये शेर खुद-ब-खुद जुबान पर आ गये :

ज़ायका चख के वो कहने लगा बालाई का

काश मैं छोकरा होता किसी हलवाई का

ऊंट जब जंगल में उठता है जंमाई लेकर

याद आ जाता है नक्शा उनकी अंगड़ाई का

(अज्ञात)

▣

आज इतवार का दिन है, कोई काम नहीं है और मैं हूं कि इश्क के बारे में सोच रहा हूं. लैला-मजनू, शीरी-फरहाद, सोहनी महिवाल, रोमियो और जूलियट तथा हीर-रांझा की प्रेम कथाएं आंखों के सामने उतर रही हैं. इन लोगों का नाम इतिहास में केवल इस कारण आया कि इन्होंने प्रेम किया और तबीयत के साथ किया. मेरे ख्याल से ये सब उल्लू के पट्ठे थे जो एक ही लड़की या लड़के के पीछे दीवाने रहते रहे और अच्छे-खासे धंधे को दुखांत बना दिया. आदमी तो वे हैं जो 'वुडहाउस' के पात्रों की भांति बीस-पचीस जगह दिल एक साथ लगाते हैं. इसे कहते हैं थोक व्यापार. बायरन जो था, औरत को बनियान समझता था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और यह तो बहुत ही बेहूदा बात है कि शादी के बाद इंसान प्रेम करने की आदत ही छोड़ दे. भगवान रजनीश कहते हैं कि सुखी दांपत्य-जीवन की कुंजी शादी की सीमा के बाहर के प्रणय में ही छिपी है. और जब रूसो, शैली, गेटे, बायरन, जार्ज ईलियट, पिकासो, शरत्चंद्र, दुनिया भर की किस्म के लोग प्रेम कर सकते थे तो मैं वैसा क्यों नहीं कर सकता!

हां अलबत्ता, इतना ख्याल जरूर रखूंगा कि लड़की जो हो, वह कुछ धंधा करती हो ताकि धर्म-पत्नी यदि पृष्ठभूमि पर लात मारकर वनवास भी दे दे तो भूखों न मरना पड़े. मेहतरानी से इश्क करना अमीरों का पुराना शौक रहा है और कुछ मेहतरानियां तो रानियां जैसी ही लगती भी हैं, क्योंकि प्रायः उनकी रगों में भी सूर्यवंश और चंद्रवंश का रक्त पाया जाता है, ऐसा करने से हरिजनोद्धार जो होगा, सो अलग. वकौल कवि की स्थिति यह होगी कि :

मेहतरानी से दिल लगाते हैं
वह कमाती है, आप खाते हैं

(फ़िराक)

▣

कुछ जिज्ञासु भाई यह शंका कर सकते हैं कि प्रेम होता कैसे है? वे अगर शुरुआत करें तो आंखों से करें या दिल से करें? बात को खत्म करने के लिए मैं कवि की कुछ पंक्तियां उद्धृत करता हूं, और बड़ी उदासी के साथ इस गाथा को यहीं समाप्त करता हूं!

कहता है दिल कि आंख ने मुझको
किया खराब
कहती है आंख ये कि मुझे दिल ने
खो दिया
लगता नहीं पता कि सही कौन सी
है बात
दोनों ने मिल के 'मीर' हमें तो
डुबो दिया ☐

(मीर)

● ज्वाइंट कंट्रोलर, डिफेंस एकाउंट्स, अदर रैंक्स, मेरठ छावनी (उ. प्र.)

लघुकथाएं

भूख

बड़े पेड़ के पास नन्हा पेड़ भी बढ़ रहा था. कुछ पक्षी उस पर भी आकर बैठते थे, उड़ जाते थे. एक दिन नन्हें पेड़ पर एक कठफोड़वा आकर बैठा और लगा अपनी चोंच से उस पेड़ के शरीर पर चोट करने. नन्हा पेड़ दर्द से तिलमिला उठा. अब कठफोड़वा चला गया तो बड़े पेड़ से पूछा, "भाई साहब, तुम्हारी तरह अब मुझ पर सुंदर-सुंदर पक्षी बैठने लगे हैं. कभी तोता आता है और फलों के रस से भीगी अपनी चोंच मुझ पर पोंछ जाता है. कौआ आता है, कभी दही के स्वाद से कभी मांस के स्वाद से मुझे परिचित करवा जाता है. कुछ पक्षी तो मुझ पर अपनी चोंच से ऐसे-ऐसे खाद्य पदार्थ छोड़ जाते हैं कि मैं उनका नाम भी नहीं जानता. लेकिन आज यह कैसा सुंदर पक्षी आया जिसने मेरे शरीर में जगह-जगह घाव कर दिये हैं! यह कैसा स्वाद है?

अब तक जितने पक्षी तुम्हारे पास आये थे उन सबका पेट और मन भरा हुआ था. अब तक तृप्त चोंचों ने तुम्हारे नन्हें शरीर को छुआ था. पहली बार एक भूखी चोंच का अहसास तुम्हें हुआ है. यह भूख थी!"

दूरदर्शी

नेताजी जंगल में भटक गये. काफी भटकने के बाद उन्हें एक लकड़हारा नजर आया. उसने नेताजी को रास्ता दिखाया. नेताजी ने कहा, "मैं मंत्री हूं. कोई काम पड़े, मेरे पास शहर में जरूर आना." लकड़हारे ने कहा, "नहीं मैं शहर नहीं आऊंगा. सुना है, वहां जाने वाले गांव का रास्ता भूल जाते हैं." नेताजी ने 'वाह' कहा और अपने रास्ते चल दिये.

दूसरे दिन सुबह नेताजी ने देखा, उनके बंगले के बरामदे में वहां लकड़हारा बैठा है.

"क्यों भैया, क्या काम आ पड़ा?"

"काम तो कुछ नहीं है. यह सोचकर चला आया कि जब मुझे कोई काम पड़ेगा तब आप मंत्री होंगे, इसकी क्या गारंटी है? इसीलिए मेरा कोई काम करना है तो आज ही कर दो."

वाह, इतने दूरदर्शी हो फिर भी आज तक लकड़हारे ही रहे", यह कहते हुए उसे वन-संरक्षण-समिति का अध्यक्ष बनाने का फैसला कर लिया गया.

अभी तो कुर्सी पर हो

मंत्रीजी जंगल में भटक गये. सिर पर ताजपोशी वाली टोपी थी, पीछे सेक्रेटरी था, सेक्रेटरी के हाथ में तिरंगी झंडी थी. कोई भी पहचान लेता कि ये मंत्रीजी हैं. भटकते-भटकते एक आदमी दिखाई दिया. नेताजी ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए पूछा, "भैया तुम बता सकते हो कि मैं कहां हूं?"

"अभी तो कुर्सी पर, लेकिन जिस दिन यह छूट जायेगी, उस दिन असली जगह का पता चल सकेगा," कहते हुए वह आदमी अपने रास्ते चल दिया.

▣ गोविंद शर्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

नौ बजे के करीब बस फिर चल पड़ी. लेकिन रैना बहुत उदास थी. विमल उसके साथ होते हुए भी जैसे साथ नहीं था. इस बीच उसने विमल के बारे में सब कुछ जान लिया था और अपने बारे में भी उसे सब कुछ बता दिया था. विमल एक सरकारी प्रतिष्ठान में पी. आर. ओ. था और वह स्वयं एक सरकारी स्कूल में वरिष्ठ अध्यापिका थी. विमल के पिता की रेल दुर्घटना में मृत्यु हो गयी थी, लेकिन उसकी मां भी पिता की मृत्यु के बाद मुश्किल से एक वर्ष जीवित रह सकी थी. लोग कहते थे कि दोनों में इतना गहरा लगाव था कि पिता उसे भी अपने साथ ले गये. वैसे उसकी मां जब तक जिंदा रही, बराबर अपने पति के ही बारे में सपने देखती रही, बल्कि कई बार तो उसने

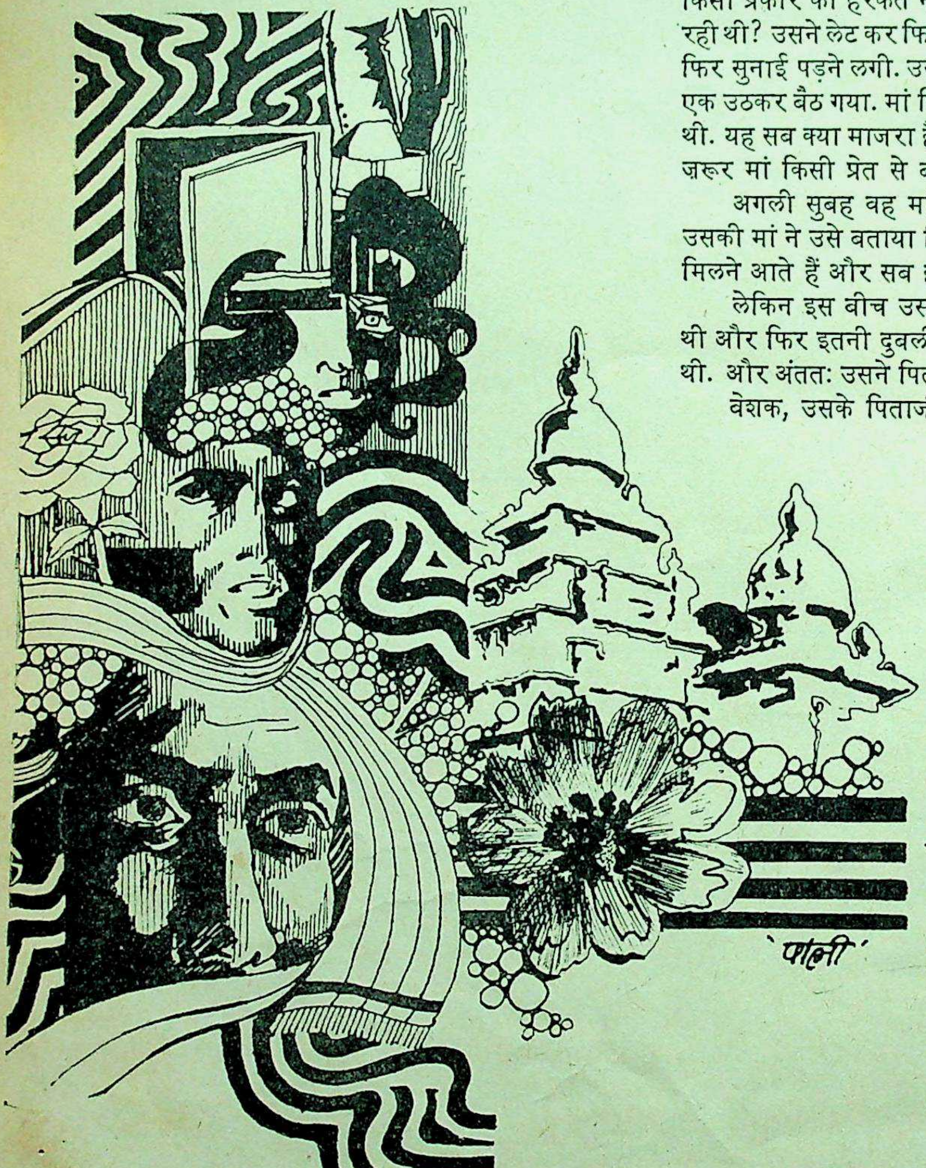

यात्रा

- श्रवण कुमार

स्वयं अपने कानों से मां को रात के वक्त किसी से बातें करते सुना. पहले तो उसे विश्वास नहीं हुआ, लेकिन फिर उसने उस बात की तह तक जाना चाहा. इसलिए एक रात वह बिल्कुल सोया नहीं. नियत समय पर उसे मां की आवाज फिर सुनाई दी. वह फौरन चौकन्ना हो गया. मां बिस्तर में पड़े-पड़े ही बातें कर रही थी. वह उठ खड़ा हुआ और मां की ओर बढ़ा. अब मां आराम से सो रही थी.

तेरह-चौदह वर्ष की उम्र कुछ कम नहीं होती. वह सब समझता था. पर दरवाजे-खिड़कियां तो सब वैसे ही बंद थे. कहीं किसी प्रकार की हरकत नहीं थी. तब मां किसके साथ बातें कर रही थी? उसने लेट कर फिर सोने की मुद्रा बना ली. मां की आवाज फिर सुनाई पड़ने लगी. उसने फिर अपनी आंखें खोलीं और एकाएक उठकर बैठ गया. मां फिर चुप थी और आराम से सो रही थी. यह सब क्या माजरा है? अब उसे एकाएक भय लगने लगा. ज़रूर मां किसी प्रेत से बातें करती है.

अगली सुबह वह मां से पूछे बिना रह न सका. और तब उसकी मां ने उसे बताया कि रोज रात को उसके पिताजी उससे मिलने आते हैं और सब हालचाल पूछकर लौट जाते हैं.

लेकिन इस बीच उसकी मां दिन-ब-दिन दुबली होती गयी थी और फिर इतनी दुबली हो गयी थी कि भयानक लगने लगी थी. और अंततः उसने पिता की राह पकड़ ली थी.

बेशक, उसके पिताजी उसके नाम खासी रकम छोड़ गये

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, पर नाबालिग होने की वजह से वह उसे छेड़ नहीं सकता था. उधर रिश्ते में भी कोई ऐसा नहीं था जिस पर निर्भर किया जा सकता. गनीमत यह थी कि मकान पुश्तैनी था, पर इतने बड़े मकान में अकेले कैसे रहा जाये. नौकर-चाकर की घर में प्रथा नहीं थी. आखिर उसके विद्यालय का एक शिक्षक वहां सपरिवार आकर रहने लगा. परिवार में केवल दो लड़कियां थीं. उनकी मां को मरे भी तीनेक वर्ष हो चुके थे. बड़ी लड़की लगभग अठारह वर्ष की थी और छोटी सोलह वर्ष की. यानी दोनों उम्र में उससे बड़ी थीं, लेकिन दोनों उसे बहुत स्नेह देती थीं. बड़ी कॉलेज जाने लगी थी, लेकिन छोटी अभी स्कूल में ही थी. घर-गृहस्थी खूब संभाल की थी उन्होंने. स्कूल कॉलेज से लौटने के बाद घर में ये दो लड़कियां और नन्हा विमल ही होता. तीनों खूब जमकर पढ़ते और खूब जमकर खेलते. घर में हर तरह के इनडोर खेल थे. शतरंज में विमल का मन खूब लगता था. दीप्ति यानी बड़ी लड़की भी शतरंज में माहिर थी. वह कई बार विमल को शह देती. विमल शह लेता, लेकिन बच निकलता. कई बार ऐसे लगता जैसे वह अब निकल नहीं पायेगा, लेकिन वह बचने की राह निकाल ही लेता. खैर, धीरे-धीरे वह खुद इतना माहिर हो गया कि दीप्ति को शह देते-देते उसे मात देने लगा. दीप्ति कभी-कभी उखड़-सी जाती और अजीब-सी नजरों से देखने लगती. विमल उन नज़रों को ठीक से तो नहीं पहचानता था, पर उसे वे सामान्य न दिखतीं.

▣

एक दिन घर में केवल वह और दीप्ति ही थे. पढ़-लिख चुकने के बाद शतरंज की बाजी जमने को थी. विमल हाफ-पैंट पहने था. वे फर्श पर बैठे थे. खेल शुरू हुआ तो पहले दीप्ति ने विमल को शह दी, लेकिन फिर विमल उसे शह देने लगा. आखिर दीप्ति घिर गयी और हार गयी. पर हारकर भी उसने हार न मानी. वह विमल से लिपट गयी और उसे बेतहाशा चूमने लगी. फिर उसका हाथ विमल की हाफ-पैंट के भीतर घुस गया और विमल के भीतर सोये पुरुष को जगाने लगा. उस समय दीप्ति की सांस बहुत तेज चल रही थी और वह विक्षिप्त-सी हुई जा रही थी. फिर न जाने कैसे दोनों के शरीर एकस्थ हो गये और विमल को लगा कि वह एकाएक जवान हो गया है और दीप्ति से उम्र में भी कहीं बड़ा हो गया है. उसके बाद दीप्ति को विमल के भीतर के पुरुष को जगाने की जरूरत न पड़ी, विमल ही उसके भीतर की नारी को जगाने लगा. दीप्ति के चेहरे पर अब जैसे जगमगाहट-सी व्याप्त हो गयी थी और उसके शरीर में भी जैसे लास्य आ गया था. उस जगमगाहट और लास्य की वजह से वह अब अधिक सम्मोहक, अधिक स्पृहणीय लगने लगी थी. विमल भी अब अपने को हमेशा हल्का-हल्का-सा महसूस करता, जैसे उसके पंजों में स्प्रिंग लग गये हों. वैसे भी विमल अब अठारह वर्ष पूरे कर गया था और कानून की निगाह में वयस्क हो चुका था. इसलिए अब उसे किसी बात के लिए किसी का मुंह देखने की जरूरत नहीं थी.

इधर दीप्ति की छोटी बहन तृप्ति भी विमल की ओर उन्हीं आंखों से देखने लगी थी, जिन आंखों से कभी दीप्ति ने उसकी ओर देखा था. विमल अजब असमंजस में पड़ गया था, इसलिए एक बार वह लगातार कई दिनों के लिए घर से बाहर रहने के लिए कहीं चला गया और जब घर लौटा तो वह एक दूसरा आदमी था. उसमें अब चट्टान की-सी पुख्तगी आ चुकी थी. उसका लक्ष्य अब उसके लिए प्रमुख हो गया था. वह जीवन की गुत्थियों को समझना चाहता था. इसलिए ज्ञान के हर क्षेत्र की ओर वह अग्रसर होने को आतुर था. कभी वह विज्ञान से कुछ पाने की कोशिश करता कभी दर्शन की गहराई में उतरना चाहता और कभी साहित्य-कला को परखता. पर साहित्य-कला के प्रति उसकी रुचि कुछ अधिक विकसित होने लगी, जैसे इसी में उसे त्राण मिलेगा. वह स्वयं भी अब कुछ-न-कुछ लिखता रहता और जो लिखता उसे संजोये जाता. फिर धीरे-धीरे उसकी वे रचनाएं प्रकाश में आने लगीं और उसे मान्यता भी मिलने लगी. यहां तक कि उसे एक अग्रणी रचनाकार माना जाने लगा.

▣

लेकिन इस बीच उसके मन में एक तरह का खला भी पैदा हुआ था. दीप्ति और तृप्ति दोनों अब विवाहित थीं, बल्कि दो-दो, तीन-तीन बच्चों की मां बन चुकी थीं और शिक्षक महोदय पता नहीं कहां थे. संभवतया तमाम उम्र संघर्षरत रहने के बाद उनमें विरक्ति-सी आ गयी थी और उन्होंने सन्यास ले लिया था. दीप्ति से कभी-कभार उसकी भेंट अब भी हो जाती थी. उसमें कमनीयता अब भी कम नहीं थी, पर वह उसके काफी दूर जा चुकी थी. अलबत्ता इस बीच विमल एकदम कुंवारा रहा. लतिका, मृदुला, सांत्वना तथा सुधा से उसके संबंध काफी घनिष्ठ रहे, लेकिन बात जब शरीर तक आती तो वे एकाएक छिटक कर परे हट जातीं और विमल ने यह कभी न चाहा कि नौबत बलात्कार तक पहुंचे. दरअसल, वह उन सबमें दीप्ति ढूंढता रहा, वही दीप्ति जिसने उसके साथ लगभग पुरुष जैसा व्यवहार किया था. और अब एका-एक रैना उससे आ टकरायी थी.

रैना कद्दावर थी, लचीली और अच्छी तराश लिये हुए थी, लेकिन ताज्जुब कि उसे कला-संस्कृति से कोई सरोकार नहीं था. वह कॉमर्स की अध्यापिका थी और शायद इसी कारण एकदम सीधे-सीधे बात करती थी. परोक्ष का उसके यहां कोई महत्व नहीं था. उसके घर में भी परोक्ष को कोई महत्व नहीं मिलता था. उसके पिता एक अवकाश-प्राप्त सरकार मुलाजिम थे. उसकी मां भी एक लंबे अर्से तक नौकरी में रही और बाद में छुट्टी लेकर जब घर बैठी तो बैठी ही रही. बहन-भाइयों में रैना सबसे बड़ी थी. उम्र बेशक उसकी तीस की होने को आयी थी, पर शादी का मसला कभी किसी ने संजीदगी से उठाया नहीं. सभी ऐसा सोच बैठे थे जैसे यह उसका निजी मामला हो. वैसे वह राकेश के बहुत निकट रही, लेकिन उसे वह अपना न सकी. राकेश था भी विवाहित. अपनी पहली पत्नी को छोड़े तब इसे रखे. लुका-छिपी में रैना को मजा नहीं आता था. अवधेश से भी उसके संबंध लगभग वैसे ही रहे. पर वह तो विवाह-संस्था को एकदम बोसीदा और जर्जरित करार देता था और हिप्पियों की तरह उन्मुक्त रहना चाहता था. रैना को पीठ पर बच्चे लादकर घूमती हिप्पी लड़कियां बड़ी बेचारी लगतीं. यह सारी मजबूरी तो फिर औरत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की हुई न? जैसे वह आदिम समाज में लौट गये हों, लेकिन अगर विवाह-संस्था जर्जरित भी हो चुकी है, तब इसका विकल्प क्या है? आदमी-औरत बने तो एक-दूसरे के लिए ही हैं न. शरीर की रचना भी कितने अनुपात में हुई है. हर अंग की अपनी उपयोगिता है. हर अंग में अपनी तरह की विलक्षणता है. फिर उन अंगों में उठने वाली सूक्ष्म से सूक्ष्म तरंगें! रैना बड़े अचरज में पड़ जाती, यह सब सोचकर. लेकिन इसके परे उसकी बुद्धि चकराने-सी लगती. बेशक, कला-संस्कृति से वह दूर रही, पर जीवन-के रहस्यों को जानने के लिए वह भी काफी आतुर रही. दरअसल, शुरू-शुरू में उसने कुछ कविताएं लिखीं भी, लेकिन उसे लगा जैसे यह सब सच्चाई नहीं, सच्चाई की नकल है या उससे पलायन है. क्या ऐसा नहीं होता कि लेखक स्थिति की सच्चाई को अंकित-करते-करते उसमें कल्पना का पुट कुछ अधिक देने लगता है ताकि वह सबकी सच्चाई बन सके? निस्संदेह, विज्ञान ने बहुत कुलाचें भरी हैं, लेकिन फिर भी कहीं-न-कहीं उसे घुटने टेक देने पड़ते हैं. सबसे बड़ी चुनौती तो विज्ञान के लिए आदमी के शरीर की संरचना ही है? क्या विज्ञान कभी ऐसी संरचना कर पायेगा? क्या विज्ञान हाड़-मांस का एक जीता-जागता आदमी खड़ा कर सकता है? और तो और, परीक्षण-नली के बच्चे भी अब कहीं अपना अस्तित्व बरकरार रख पाये? और यह सौर मंडल? और इस दृश्य सौर मंडल से परे के अदृश्य सौर मंडल. कितना विलक्षण है यह समूचा वितान! क्या आदमी इस ब्रह्मांड के तमाम भेद जान पायेगा? तब इस समूची सृष्टि के पीछे कौन है? है न यह फिर वही दकियानूसी प्रश्न? क्या इससे ईश्वर की सत्ता प्रमाणित हो सकती है? एक बार उसके एक ईश्वरवादी अध्यापक ने कहा भी था कि जब तुमने सूक्ष्म पदार्थों को देखने के लिए सूक्ष्मवीक्षण यंत्र बनाये हैं, तब तुम्हें ईश्वर-रूपी ऊर्जा को अनुभव करने के लिए वैसे ही यंत्रों का अविष्कार करना होगा. सच?

▣

विमल से उसकी एक दिन इसी विषय पर बातचीत चल रही थी. तब वे कन्याकुमारी के त्रिवेणी घाट पर खड़े समुद्र की विशालता पर अचरज कर रहे थे. किसी ने कहा था कि इस स्थल पर तीन सागर मिलते हैं—अरब सागर, हिंद महासागर तथा बंगाल की खाड़ी—और तीनों सागरों का पानी अपनी अलग-अलग रंगत लिये होता है, बल्कि तीनों सागरों की रेत भी अलग-अलग रंग की होती है. खैर! और तो और, समुद्र की ऐसी भव्यता और विशालता शायद ही कहीं और देखने को मिले. पास ही विवेकानंद की स्मृति में निर्मित रॉक मेमोरियल था. पर वहां मोटर बोट के जरिये ही पहुंचा जा सकता था. कहते हैं स्वामी विवेकानंद 1892 में शार्क-भरे इस समुद्र को तैर कर वहां पहुंचे थे और फिर रात भर वहां मनन करते रहे और इसके बाद ही उन्होंने निश्चय किया था कि वह जी-जान से गरीब जनता की सेवा में जुट जायेंगे. इस चट्टान का विवेकानंद के जीवन में वही महत्व है जो बोधि-वृक्ष का महात्मा बुद्ध के जीवन में था. यह चट्टान समुद्र तट से काफी हटकर है और लगभग पांच एकड़ के क्षेत्रफल में फैली हुई है.

विमल और रैना जब इस स्मारक में घूम रहे थे, तब हवा का वेग काफी तेज था, यहां तक कि रैना की साड़ी एकदम उड़ने को हुई. मजबूरन रैना को वहीं के वहीं बैठ जाना पड़ा. तब विमल हवा की मार को खुद झेलता हुआ रैना को किसी तरह एक सुरक्षित कक्ष में ले गया. पास ही वहां 'यान कक्ष' था. बातचीत करने की वहां एकदम मनाही थी. कक्ष में सोंधी-सोंधी अगरबत्ती की सुगंध थी. प्रकाश भी वहां काफी कम था, केवल सामने की दीवार पर बहुत बड़े सुनहरी अक्षरों में 'ॐ' लिखा हुआ था. फर्श एकदम कांच की तरह चमक रहा था. कुछ लोग वहां आंखें बंद किये आलथी-पालथी मारे वाकई ध्यान में लीन थे और कुछ दो-चार क्षण मौन रह कर वहां से बाहर निकल जाते थे. विमल और रैना भी वहां कुछ क्षण मौन रहे और फिर बाहर चले आये.

"वैसे देखो रैना, इच्छा-शक्ति क्या चीज़ है. इसी इच्छा-शक्ति से तुम चाहो तो सम्मोहन की स्थिति पैदा कर सकती हो और इसी इच्छा-शक्ति के बल पर तुम पत्थर गला सकती हो." विमल के मुंह से अनायास निकल गया.

रैना विमल की तरफ देखकर केवल मुस्करा भर दी. और वे वैसे खड़े तो रेलिंग के पास ही थे, पर ऐसे बिंदु पर, जहां हवा की मार कम-से-कम थी. हवा के चलने से समुद्र काफी उग्र हो गया था और उसकी लहरें बार-बार चट्टान से आ भिड़ती थीं. समुद्र के किनारे, एक चट्टान की ओट में उन्होंने समुद्री फेन जमा होते और फिर हवा में उड़ते भी देखा था. रैना की मुस्कराहट उसी समुद्री फेन की तरह थी जो स्थायी भी थी और अस्थायी भी. पर वाकई, मुस्कराती हुई रैना बहुत प्यारी लगती थी, क्योंकि मुस्कराते समय उसका मुंह थोड़ा खुला रह जाता था और हवा के कारण उसके बाल-उड़-उड़ कर उससे उलझते रहते थे.

"इसी इच्छा-शक्ति के सहारे तो आदमी का विकास हुआ है." रैना ने बात में बात जोड़ने की कोशिश की.

"पर मुझे विकास वाले सिद्धांत में सच्चाई कम दिखती है." विमल ने उसकी बात काटी, "और अगर आदमी का विकास हुआ भी है तो उसके पीछे संघर्ष रहा होगा, इच्छा-शक्ति नहीं. इच्छा-शक्ति से लक्ष्य-सिद्धि तो होती है, विकास नहीं."

"विकास वाले सिद्धांत में तुम्हें सच्चाई क्यों नहीं दिखती?"

"इसलिए कि जिस युग में भी वेदों या उपनिषदों की रचना हुई होगी, आज से चार हजार या पांच हजार वर्ष पहले, तब आदमी किन्हीं अर्थों में भी अविकसित नहीं रहा होगा. जहां तक आदमी के भीतर झांकने का संबंध है, उस दृष्टि से तो उसे पूर्णरूप से विकसित ही मानना चाहिए. शायद इसीलिए कुछ मतावलंबियों का कहना है कि वेद मनुष्य द्वारा रचित नहीं, सीधे ईश्वर से प्राप्त हुए."

"लेकिन आज की प्रौद्योगिक उन्नति को कौन नकार सकता है!"

"बेशक, लेकिन क्या तुम्हें मिस्र के पिरामिड्स अविकसित मानव द्वारा निर्मित किये गये लगते हैं? बल्कि उनकी विशालता को देखते हुए एरिक फोन डेनिकंस को कहना पड़ा कि उनके निर्माता इस धारा के मनुष्य नहीं थे. वे किसी दूसरे लोक से आये थे और अपना काम पूरा करके लौट गये. अपने यहां की एलोरा की मूर्तियां क्या तुम्हें कम आश्चर्यकारी लगी थीं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"लेकिन आदमी का चांद पर पहुंचना तथा मंगल एवं अन्य ग्रहों की ओर बढ़ने के प्रयास करना?"

"बेशक, पर आज से सैकड़ों वर्ष पहले की ज्योतिर्विद्या क्या किसी तरह पुरानी पड़ गयी है? और क्या चांद पर पहुंचने के बावजूद आदमी का ज्योतिषविद्या से विश्वास उठ गया है? बल्कि ताज्जुब तो तब होता है कि जब अपने को वैज्ञानिक घोषित करने वाले लोग भी अपना भविष्य जानने की आतुरता में इन्हीं ज्योतिषियों की शरण जाते हैं!"

यह नहीं कि विमल और रैना आपस में किसी प्रकार का तर्क-वितर्क कर रहे थे, बल्कि सहज रूप से अपने विचारों का आदान-प्रदान कर रहे थे. तब रैना ने विमल को बताया था कि इसी चट्टान पर बैठकर कभी कन्या यानी पार्वती ने भी शिव को पाने के लिए तपस्या की थी.

"तब तुम भी इसी चट्टान पर बैठकर अपने शिव को पाने के लिए क्यों नहीं तपस्या करतीं?" विमल ने चुटकी ली थी.

"मिल ही जायेगा कभी-न-कभी." रैना ने उसकी तरफ एक मीठी मुस्कान फेंकी थी.

रॉक मेमोरियल से लौटकर वे दोनों काफी देर तक कन्याकुमारी के बाजार में घूमते रहे थे और वहां के कारीगरों की कारीगरी सराहते रहे थे—कि किस खूबी से उन्होंने समुद्र में पायी जाने वाली सीपियों और घोंघों से तरह-तरह की मालाएं और कला-कृतियां तैयार की हैं. बस, अफसोस यही था कि ग्राहक अधिक न होने के कारण उन्हें वे कृतियां काफी सस्ते दामों पर देनी पड़ती हैं जिससे उनकी गरीबी अपनी जगह पर ज्यों की त्यों बनी हुई है. हां, कुछ पैसे वाले ठेकेदार या दुकानदार इस सौदे में जरूर अपने हाथ रंग लेते हैं और उन्होंने भी रंगे होंगे. जबलपुर में भेड़ाघाट पर भी उन्हें लगभग वही स्थिति दिखी. संगमरमर की चट्टानों में बहती नर्मदा की धारा की ओर बढ़ते समय उन्हें अनेक मूर्ति-शिल्पी संगमरमर की एक-से-एक सुंदर मूर्ति तराशते नजर आये, लेकिन उन्हें खरीदने वाले कितने थे? इसीलिए एक नन्हा कलाकार उन्हें एक छोटी मूर्ति केवल पचास पैसे में ले लेने के लिए बार-बार आग्रह करता रहा.

▣

कन्याकुमारी, रामेश्वरम, मदुरै तथा तिरुपति के मंदिरों में उन्हें एक बात बार-बार अखरी कि यहां के पुजारी तथा उनके आस-पास के लोग इतने रूढ़िवादी तथा कर्मकांडी क्यों हैं? कन्याकुमारी के मंदिरों में उन्हें आदेश मिला कि विमल को अपने धड़ के वस्त्र उतारने होंगे और निचले हिस्से पर परिधान के रूप में सफेद धोती लपेटनी होगी. बहरहाल, रैना के लिए कोई मनाही नहीं थी. परिणामस्वरूप, रैना तो देवी कन्याकुमारी के दर्शन कर आयी, पर विमल उससे वंचित ही रहा. इसी तरह रामेश्वरम तथा मदुरै के मंदिरों में भी कई वर्जनाएं थीं, जिनमें मुख्य वर्जना यह थी कि केवल हिंदू ही इन मंदिरों में प्रवेश पा सकते हैं. दूसरे, देवी-देवताओं के अलग-अलग रूप में दर्शन करने के लिए अलग-अलग दर के टिकट लेने होते थे. लेकिन सबसे ज्यादा हैरानी उन्हें तिरुमला में हुई, जहां तिरुपति के दर्शन करने के लिए आये दर्शनार्थियों की भीड़ हजारों-लाखों की थी और जहां मूर्ति से साक्षात्कार करने के लिए घंटों की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी. हां, जो सवा सौ रुपये का टिकट खरीद सकते थे, वे भगवान के द्वार पर तुरंत पहुंच सकते थे. बेशक, ऐसी व्यवस्था कुछ दर्शनार्थियों की सुविधा के लिए की गयी होगी, पर अंततोगत्वा था तो पैसे का ही बोलबाला न! दूसरे अर्थों में भगवान तो पैसे वालों का ही हुआ न.

लेकिन दर्शनार्थियों की ऐसी भीड़ शायद ही कहीं और जुटती हो. साधारण दर्शनार्थियों को कई आंगनों-गलियारों में से गुजरकर मुख्य द्वार तक पहुंचना था और ये गलियारे मोटी जाली से ढके हुए थे ताकि किसी घुसपैठिए को अपनी कला दिखाने का मौका न मिले. जाली से कोई एक गज फासले पर रेलिंग भी लगी थी ताकि कोई आसानी से जाली के निकट न जा पाये. पर भिखमंगे यहां भी बाजी मार ले गये, क्योंकि बिना सीमा-उल्लंघन किये उन्होंने कुछ स्थलों पर टूटी या तोड़ी गयी जाली में से डंडों के सिरों पर बंधे अपने भिक्षापात्र इस तरह गलियारे में लटका रखे थे कि दर्शनार्थी बिना किसी असुविधा के उनमें जो चाहें, डाल सकते थे.

▣

विमल और रैना कौतूहलवश आध-एक घंटा एक बड़े हाल में साधारण दर्शनार्थियों के बीच बैठे रहे, लेकिन फिर दर्शन की अभिलाषा को छोड़ वैसे ही वहां से लौट आये. लेकिन उनके बाकी साथियों ने निष्ठापूर्वक अपनी बारी की इंतजार की और उन्हें निराश नहीं होना पड़ा, हालांकि भगवान के पास पहुंचकर भी वे भगवान पर प्रसाद चढ़ाने में सफल नहीं हो पाये.

क्या यह कोरी धर्मांधता नहीं है? कहते हैं, यहां सैकड़ों लोगों की मनोकामनाएं पूरी हुई हैं. तभी तो मंदिर के बाहर, तिरुमाला के परिसर में, कई पुरुष, स्त्रियां और बच्चे अपनी-अपनी मनोकामना पूरी हो जाने के एवज में तिरुपति को अपने केश-राशि भेंट कर रहे थे. यह अलग बात थी कि यह केश-राशि अब देश-विदेश से धन कमाने लगी थी. पर बिना बालों के स्त्री जैसे कि अपनी गरिमा खो देती है!

हां, एक बात से विमल और रैना बहुत खुश थे और वह थी तिरुपति तथा तिरुमाला में आवास-व्यवस्था. तिरुपति में बस अड्डे के पास ही सरकारी धर्मशालाएं थीं, जहां हर यात्री के लिए बिना छोटे-बड़ों का लिहाज किये, स्नानाघर तथा शौचालय से युक्त एक कमरा उपलब्ध था. तिरुमाला पहाड़ी पर स्थित था और तिरुपति का मंदिर वहीं था, पर तिरुपति नगर पहाड़ी से नीचे था. वैसी ही धर्मशालाएं तिरुमाला में भी उपलब्ध थीं, लेकिन यदि कोई एकदम अलग रहना चाहे तो वह थोड़ा-सा किराया देकर वहां अपना पूरा कॉटेज भी ले सकता था.

विमल और रैना चाहते थे कि वे अपना एक कॉटेज लेकर कुछ-एक दिन रुकें, पर इतना समय ही कहां था. उनको बस यहां पिछली रात पहुंची थी और अगली शाम को उन्हें यहां से चल देना था. गनीमत थी कि कन्याकुमारी में वे दो रात रुक सके, जिससे वहां के सौंदर्य का थोड़ा आत्मसात करने का मौका उन्हें मिल गया. इसी तरह चितौड़ गढ़ के किले में समिद्धेश्वर मंदिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की त्रिमूर्ति तथा मैसूर के निकट श्रीरंगापटन में श्रीरंगानाथ स्वामी मंदिर में शैयाशायी शिव की विराट मूर्ति ने भी उन्हें बांधा था, पर वहां समय इतना कम दिया गया था कि उन्हें मंदिरों के भीतर घुसते ही बाहर आना पड़ा था. एलोरा-अजंता की गुफाएं देखते समय भी उन्हें ऐसे लगता था जैसे कोई हाथ में कोड़ा लिये उन्हें सरपट दौड़ने पर मजबूर कर रहा है. वैसे गोवा में डोना पोला नामक स्थल पर भी समुद्र काफी भव्य था, पर वहां भी वे मुश्किल से एक-सवा घंटे तक रुक पाये थे. उस समय समुद्र व्यग्र था, इसलिए लहरें एक के ऊपर एक चढ़ती-सी, एक दूसरे से भिन्न रंगों में, स्पष्ट आकार लिये, तट की ओर दौड़ती नज़र आती थीं और वहां चट्टानी पत्थरों से टकराकर ढेरों पानी उछालती हुई छिन्ना जाती थीं.

▣

कहते हैं डोना पोला प्रेमी-प्रेमिका थे—प्रेमिका गोवा-निवासी और प्रेमी फ्रांसीसी. लेकिन उनका प्रेम परवान न चढ़ सका, इसलिए उन्होंने समुद्र में कूदकर इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में अपने प्रेम को परिणति देनी चाही. इसलिए उस स्थल-विशेष को जहां से वे कूदे थे, 'लवर्स प्वाएंट' कहा जाता है. उसे अब अच्छी-खासी शक्ल दे दी गयी है. अब बाकायदा आप छोटी-छोटी सीढ़ियों की राह वहां तक पहुंचते हैं और वहां पहुंचकर दूर-दूर तक फैले समुद्र में उछाल भरते पानी को देख सकते हैं.

विमल और रैना जब वहां पहुंचे, नारायणदास तथा उसकी पत्नी रुक्मणी, अलका तथा उसकी मां दमयंती और पिता दौलतराम तथा हरजीत पहले से ही वहां मौजूद थे. उनके पीछे-पीछे अग्रवाल तथा उसकी पत्नी रूपवती, श्रीवास्तव तथा उसकी पत्नी मणि एवं पद्माकर तथा उसका परिवार भी चले आये थे. द्रविड़ तथा उसकी पत्नी शांति, विष्णुस्वरूप और आयोजक मेहरोत्रा नीचे बार में बीयर तथा व्हिस्की का मजा लेने रुक गये थे. द्रविड़ की दोनों जवान बेटियां अनुराधा और रेखा तथा अन्य यात्री अब भी नीचे रेलिंग के सहारे खड़े समुद्र की लहरों में भीग-भीग कर निहाल हो रहे थे.

इतने में हरजीत को जाने क्या सूझी कि वह अपनी पांच-छः वर्षीय बच्ची डिप्पी को नचाने लगी और स्वयं ताली पीट-पीट कर गाने लगी. वहां खड़े हर व्यक्ति का ध्यान उसकी ओर था और वे उसमें पूरी रुचि ले रहे थे.

पद्माकर ने सुझाव दिया कि सब लोग दायरे में बैठ जायें और बारी-बारी से एक-एक गीत या कुछ भी सुनायें.

सबसे पहले हरजीत ने ही नये सिरे से शुरू किया और उसकी बेटी अपनी नन्हीं कमर पर हाथ रखकर गोल-गोल घूमकर नाचने लगी :

ए री छोरी बामन की
तेरी कम्मर मैली हो री सै
ऐ री छोरी...
करम फूट गया उन मरदां के
जिनकी जोरू मोटी सै
दरवाजे में फंस गयी रे
धक्कम-धक्की हो रही सै
ऐ री छोरी...

'करम फूट गया उन मरदां के', नाचते समय छोटी बच्ची ने जब अपने माथे पर हाथ मारा तो हर कोई खिलखिलाकर हंस पड़ा. पहले जोरु मोटी बनी थी, फिर लंबी, फिर ठिगनी और फिर पतली, पर हर तरह मरदों के करम फूटे थे.

बच्ची बैठ गयी तो अग्रवाल ने एक तुक शुरू की और हर किसी से अनुरोध किया कि जब वह अपनी पंक्ति कह ले तो सब अखिरी पंक्ति दोहरायें:

अज वा पुरे दी वगदी ए
तेरी चुन्नी उड़दी जांदी ए
नी कूड़े तू चुन्नी लै—हां, कुड़े तू चुन्नी लै
मुटियारे देश पंजाब दिये
तक ऐदर पील्लू तोड़ दी ए
नी चुन्नी लै—हां, कुड़े तू चुन्नी लै

अब तक वहां द्रविड़ तथा उसकी टोली एवं अनुराधा-रेखा तथा उनकी टोली भी पहुंच चुकी थी. अच्छा खासा मजमा लग गया था.

हरजीत ने अब पंजाबी गिद्धा शुरू किया था और फिर तुरंत ही उठकर अपने नितंब झुलाती नाचने लगी. उसके साथ अनुराधा और रेखा भी नाचने लगीं. नजारा एकदम रंगीन हो गया. चारों ओर कुलाचें भरता, गरजता समुद्र, यहां इस 'लवर्स प्वाएंट' पर प्रेम के उलाहने-भरे गीतों और नाच का समां! हर कोई सरूर में आ गया था. द्रविड़ तथा मेहरोत्रा को तो दूसरी तरह का भी सरूर था. इसलिए वे दोनों एक-दूसरे के मुकाबले ही भंगड़ा-नुमा ट्विस्ट करने लगे. बस, कसर ढोलचियों की थी और वह किसी तरह भी पूरी नहीं हो सकती थी. वहां खाली टीन के कनस्तर भी नहीं थे कि उन्हीं से काम चला लिया जाता. बहराल, मस्ती वहां अपने पूरे उन्माद में थी.

रैना से एक कश्मीरी गीत गाने को कहा गया. वह पहले सकुचायी, पर फिर गाने लगी. उसके स्वर में मिठास थी, पर संतुलन नहीं था. फिर भी वह बराबर गाती रही और द्रविड़ से थपकी लेने की हकदार बन गयी. कुछ लोगों को ताज्जुब हुआ कि द्रविड़ को थपकी देने की यह क्या सूझी.

रैना के बाद विमल ने गाया था. एक पुराना फिल्मी गीत था जिसमें क्लासिकल पुट काफी था. पर विमल उसे निभा ले गया. उसकी आवाज़ में एक महीन कंपन था जिससे वह गाना और असरदार हो गया. जब तक विमल गाता रहा, रैना उसकी ओर टकटकी लगाये देखती रही. वह भी रैना की ओर टकटकी लगाये देख रहा था. रैना समझ रही थी कि यह गीत उसी के लिए है.

आखिर मेहरोत्रा ने 'टाइम अप' होने का सिगनल दिया था और हर कोई खुश-खुश-सा उठ खड़ा हुआ था.

बस की ओर बढ़ते हुए और बस में बैठकर भी कुछ लोग बराबर कोई-न-कोई धुन गुनगुनाते रहे थे और मेहरोत्रा का गुणगान करते रहे थे कि उसने उनके कुछ क्षण तो निश्चित रूप से सुखमय बना दिये. □

● एच-259, डी.डी.ए. फ्लैट्स, नारायण विहार, नयी दिल्ली.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग़ज़लें

एक

बात कम कीजे ज़हानत को छुपाते रहिए.
ये नया शहर है कुछ दोस्त बनाते रहिए.

दुश्मनी लाख सही ख़त्म न कीजे रिश्ते. . .!
दिल मिले या न मिले हाथ मिलाते रहिए.

ये तो चेहरे का कोई अक्स है तस्वीर नहीं
इस प कुछ रंग अभी और चढ़ाते रहिए.

ग़म है आवारा अकेले में भटक जाता है
जिस जगह रहिए वहां मिलते-मिलाते रहिए.

जाने कब चांद बिखर जाये घने जंगल में
घर की चौखट पै कोई दीप जलाते रहिए.

▣ निदा फ़ाज़ली

दो

कोई गिला, कोई शिकवा, ज़रा रहे तुमसे,
ये आरज़ू है कि एक सिलसिला रहे तुमसे.

अब एक दिन की जुदाई भी सह नहीं सकते,
जुदा रहे हैं तो बरसों जुदा रहे तुमसे.

फ़क़त ये बात कि तुमसे बड़ी उमीदें हैं,
ख़फ़ा न होना अगर हम ख़फ़ा रहे तुमसे.

क़दम-क़दम पै कोई आरज़ू की राहों में,
ठहर के अपना पता पूछता रहे तुमसे.

तुम्हारे ग़म से हमें कितने काम बाक़ी हैं,
तमाम उम्र यूं ही जी लगा रहे तुमसे.

हरेक शख़्स की होती है अपनी मजबूरी,
मैं उस जगह हूं जहां फ़ासला रहे तुमसे.

हमारे इश्क़ की बुनियाद है फ़िराक़ पै शाज़,
ख़ुदा करे कि ये नुक्ता छुपा रहे तुमसे.

▣ शाज़ तमकनत

तीन

आजकल इस बात से अब ये भी घबराने लगे
चिलचिलाती धूप में साये नज़र आने लगे.

मौत से ज़्यादा भयानक हो गयीं ख़ामोशियां
तोड़कर ख़ामोशियों को लोग चिल्लाने लगे.

ठंड से सिकुड़ी हुई जब बाजुएं जुड़ने लगीं
धमनियों में रक्त के नाले नज़र आने लगे.

इस क़दर तोड़ा है आदम को मुई महंगाई ने
पसलियों में भूख के जाले नज़र आने लगे.

▣ रवि खंडेलवाल

चार

देखकर उनकी हरकतें औ जांच कर उनके बयान,
हो रहा फिर से अंधेरा पहले जितना सावधान.

कल हुई थी गुप्त बैठक कर्णधारों के यहां,
तय हुआ है बख़्श दो कुछ ख़ास लोगों को ज़ुबान.

देश की जनता के प्रति जब व्यक्त निष्ठा हो गयी,
रो पड़ी पूरी व्यवस्था, हंस रहा था संविधान.

आदमी के सोचने का दायरा सीमित करो,
ताकि उनकी दिक़्क़तों का हो सके जल्दी निदान.

कह रहीं लहरें नदी से आज थोड़ा कम उफन,
बाढ़ का दौरा करेंगे देश के कुछ वायुयान.

खिड़कियों के खोलते ही सूचना मुझको मिली,
रात फांसी दे चुका है रोशनी को आसमान.

इससे पहले मैं ज़मानत पर किया जाऊं रिहा,
आईने में देखने दो मुझको चोटों के निशान.

▣ गोविंद व्यास

पांच

अदलो इंसाफ़ को किस तौर सदा दी जाये
कौन मुजरिम है किसे इसकी सज़ा दी जाये.

दिल की बेचैनियां अब चैन न लेने देंगी
आशियाने को मेरे आग लगा दी जाये.

इतनी चिंगारियां भर दीं कि जला जिस्म तमाम
राख चुपचाप से दरिया में बहा दी जाये.

कोई गुलचीं न किसी फूल का गुलशन छीने
हर तरफ़ कांटों की दीवार उठा दी जाये.

ख़त्म होने नहीं आती है ये बेजान-सी रात
किसलिए शम्मा को जलने की सज़ा दी जाये.

अपनी तदबीर को हासिल है अगर रुसवाई
अपनी तकदीर की तहरीर मिटा दी जाये.

उनको हमसे है गिला हमको शिकायत उनसे
नब्ज़ को देख के दोनों को दवा दी जाये.

प्यास बुझती नहीं कितना ही पिलाओ परवेज़
मय व मीना मेरे आगे से हटा दी जाये.

▣ रऊफ़ परवेज़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

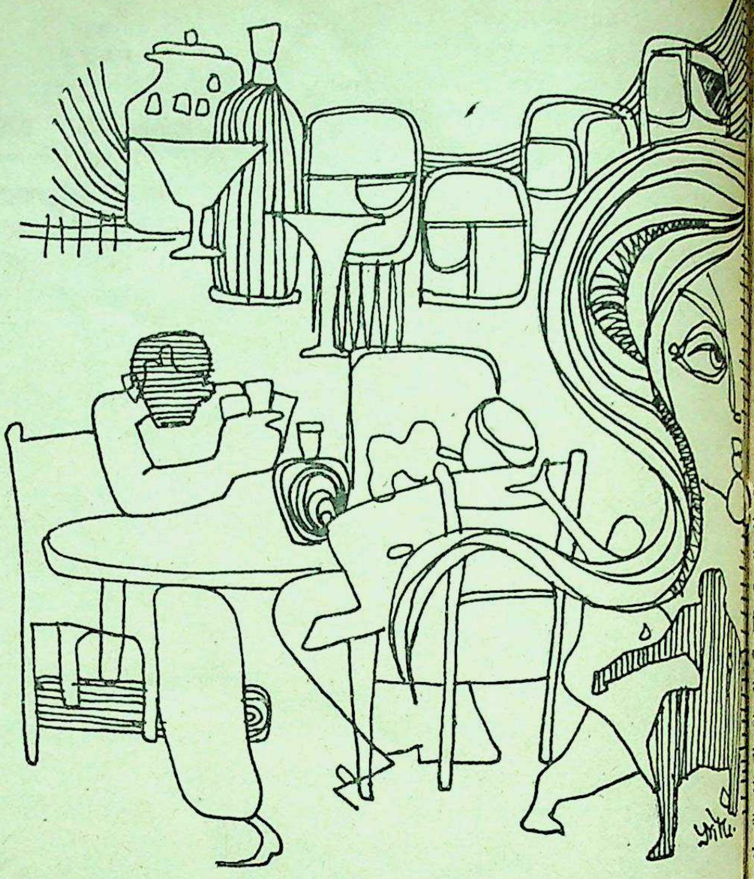

वक्त को हलाल करने वाले हाथ

▣ स्नाण मधुक

तीन रोज तक झिर-झिर करती हुई बारिश के बाद आसमान में छंटाव आया था और दिन का रंग कुछ-कुछ तांबई हो उठा था.

लैंसडाउन रोड पर जगह-जगह घुटनों तक पानी भरा पड़ा था. कहीं-कहीं जल-भंवर में फंसी हुई टैक्सियां नजर आ रही थीं. सिर्फ हाथ-रिक्शा वाले टुन-टुन की आवाज घनघनाते हुए लोगों को आर-पार ले जा रहे थे. कमर और कंधों तक डूबे हुए छोटे-छोटे नंग-धड़ंग बच्चों के दल जाने किस ओर-ठोर से प्रकट हो गये थे. मुक्त भाव से हंसते-तैरते-चिल्लाते और मौसम द्वारा उत्पन्न अव्यवस्था में आनंद की हिलोर उठाते हुए. पानी में ठप्प होकर फंसी हुई गाड़ियों को धकेलने-निकालने की कार्रवाई को भी उन्होंने बड़े मजे से खेल भावना में शामिल कर लिया था और बाबू लोगों से मूड़ी के लिए पैसे वसूल कर रहे थे.

किसी तरह हम 'राउडन स्ट्रीट' के उस पुराने खस्ताहाल मकान तक पहुंचे थे और फिल्मांकन का रुका हुआ कार्य पूरा किया था. तीसरे पहर की चाय पर अमलेंदु ने चेताया कि यहां पर तो सिर्फ आज भर का काम है, आगे के दृश्यों को फिल्माने के लिए कोई अच्छा-सा क्लब ढूंढना पड़ेगा.

सवाल उठा, कौन-सा क्लब? इस दृष्टि से कलकत्ता मेरे लिए बिल्कुल 'अपरिचित' था. एक असमंजस में डूबा-घिरा मैं स्क्रिप्ट को उलट-पुलट रहा था और सोच रहा था कि यदि बीच के कुछ शाट्स अभी छोड़ दिये जायें . . . . लेकिन तभी परेश मजूमदार, अतिमा सेन, मनु बैराठी और संकुल बनर्जी एक मेज पर सिर जोड़ कर अलग-अलग क्लबों की दुनिया को टटोलने लग गये. कहां-कैसा माहौल है, कितनी गुंजाइश और क्या-क्या अटरम-पटरम है, विचार होने लगा.

उस उलझन-भरे क्षण में, पहली बार, मेरे भीतर कलकत्ता के क्लबों को देखने-जाने की जिज्ञासा उठी. वह . . . . केवल शुरुआत थी—किंतु बाद में मैंने अपनी कई शामों को, . . . कभी मर्जी से, कभी जबरन, . . वहां ले जाकर रखा और वक्त को आहिस्ता-आहिस्ता जिबह करने वाले हाथों को . . उनसे टपकते हुए ठंडे खून के कतरों को, करीब से देखा. यह भी महसूस किया कि अपने ही भीतर निरंतर हत्या में शामिल वे खूंखार-से लगने वाले हाथ. . . मानो लकवे से पीड़ित हैं, बेजान हैं, लेकिन—उनकी उंगलियों में एक अदृश्य चाकू ठहरा हुआ है.

वह अबूझ पहेलियों, अनदेखे रास्तों और बसेरों में भटकने का बसेरा था. अमलेंदु मुझे न सिर्फ क्लबों, बल्कि उनसे जुड़े हुए 'कोलिकाता' के इतिहास में भी खींच ले गया. उसकी सचित्र शैली ने साहबी ठाठ-बाट के गुजरे हुए जमाने को हूबहू सामने ला दिया. अतिमा ने अपने पिता जतींद्रनाथ सेन के साथ एक खुली और गहरी मुलाकात की व्यवस्था की. उन्होंने बड़ इत्मीनान से मुझे कुछ दि-चस्प संस्मरण सुनाये.

"जानते हो, किप्सले एमिस की बा. . . सारी दुनिया में घूमने के बाद घोषणा की थी कि असली अंग्रेज मुझे सिर्फ एक ही जगह देखने को मि-था—और, वह. .कलकत्ता का बंगाली था!"

सेन मोशाय ने ठहाका लगा- "'कलकत्ता के क्लबों में तुम्हें ये अंग्रेज मुर्गों की टांग और शब्दों के डंठल लगातार चूसते-चबाते हुए मिलेंगे. ऐसा करने के बावजूद, मजाल है कि भर के लिए भी उनके दांतों के बीच के कटने की नौबत आये! ताज्जुब है. .

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर उन्होंने एक क्लब की रंगीनियों में गर्क हो जाने के बाद नष्ट हो गये किसी मध्यवर्गीय बंगाली परिवार के बारे में मुझे बतलाया. और, उनका स्वर उदास हो उठा, "इट्स रॉदर अ लांग स्टोरी . . आयंम अफ्रेड इट्स नॉट अ वेरी नाइस वन एंड, आइ फाइंड इट रादर डिफिकल्ट टु टेल--"

ऊब के पहाड़ों तले

रंगमंच के शौकिया अभिनेता और पेशे से फोटोग्राफर, परेश मजूमदार ने मुझे देह के सुनसान जंगलों में कहकहे लगाती हुई एक ऐसी जहरीली 'झील' के किनारे ले जाकर खड़ा कर दिया. . . जहां शराब की खाली बोतलों और जूठी प्लेटों पर मंडराती हुई उबकाइयों में जिस्मानी लेन-देन का बेपनाह शोर था, स्वीमिंग पूल से निकल कर कपड़े बदलती हुई स्त्रियों और गोल्फ खेलकर लौटते हुए पुरुषों के मध्य ऊब के ऊंचे-ऊंचे पहाड़ थे, लॉन में किलकारियां भरते हुए बच्चों और तेजी से आवाजाही करते हुए बैरों तक ने बर्फ के ठंडे चेहरे पहन रखे थे . . . मैं आतंक से भर उठा यह देखकर कि क्लब के हरे-हरे पौधों और फूलों के बीच भी . . केवल थकान और विरक्ति के संबंध थे,

तब परेश ने मुझे उबारने का भरसक यत्न करते हुए कहा था, "मुझे पता था, तुम इन लोगों से घृणा करने लगोगे. यह संसार . . . तुम्हें अरुचि और खीझ के सिवा कभी कुछ नहीं दे सकेगा. लेकिन--जरा यह देखने की तो कोशिश करो कि जीवित रहने का ऐसा छद्म . . मृत्यु से भी बदतर है, खासतौर से इस भद्रलोक में."

यह भद्रलोक सांझ पड़े क्लबों की ओर दौड़ पड़ता है. घर-दफ्तर-गद्दी से छुटकारा पाते ही उसकी आंखों में मिरगी के मरीज का-सा दीवानापन नजर आने लगता है. . . . हर क्लब के सामने कारों की लंबी कतारें, चौकीदारों के सलाम, 'हाऽऽई' में ढले हुए अभिवादन के साथ-साथ फैशन की नयी सनकों का ईर्ष्या-भरा मूल्यांकन, शानदार कार्पेट पर लड़खड़ाते हुए पांवों की बेमेल ताल, होंठों पर चिपके हुए बियर और गालियों के एक-से झाग, ताश के पत्तों और शतरंज की चालों के बीच गर्म-गर्म चुटकियों का आदान-प्रदान . . सीत्कार, बैडमिंटन का बल्ला और पसीने की चिपचिपाहट. संगीत और कॉमिक्स के जाल में खोये हुए बच्चे कुछ समझते हैं, कुछ नहीं समझते हैं. मम्मी हर शनिवार या रविवार को कहीं से एक 'अंकल' उनके लिए पकड़ लाती हैं और पापा के पास कितनी उधार की 'आंटियां' हैं, वे गिनती कर ठीक-ठीक बतला सकते हैं.

रिकार्ड-प्लेयर पर झनझनाता हुआ लयबद्ध शोर, बात-बात पर बहस, गुस्सा, टूटते हुए गिलास और फिर . . . सहसा, मुर्दाघर की सी खामोशी!

यही होता है, अक्सर. कुछ हेरफेर के साथ, सब जगह यही होता है. एकरसता को 'सरसता' में बदलने का इसके सिवा और कोई चारा नहीं. . . . वे रीत चुके हैं, सुकांत भट्टाचार्य की भाषा में कहूं कि . . उनके भीतर न ताजा धान की गंध है, न टहनियों पर खुलती हुई पंखुड़ियों की खुशबू. वे सिर्फ पोखर से निकलकर अस्तबल की ओर जाते हैं. सुनते हैं घोड़े की हिनहिनाहट. कीच से लथपथ . . . धीरे-धीरे अपनी नींद की कालिख में लौट जाते हैं--हतप्रभ, क्लांत, असंतुष्ट!

गोर्की की कहानी 'मकरछुद्रा' पर बनी रूसी फिल्म की नायिका स्वेतलाना ने उस रात यहां . . . क्लबों के संसार को एक कत्लगाह के रूप में चीन्हा था. वधस्थल! हैरत है, आदमी अपने हत्यारे को नहीं पहचानता है. वह उसके अंदरूनी इलाकों की किसी खोह में छुपा रहता है और रोज सूरज डूबते ही उकसाता है--चलो चलो, वहां चलो, वहीं तुम्हारी अंधी और बेमानी और लोलुपता से भरी दौड़ का अंतिम छोर है!

इकसठ वर्ष बूढ़ी डायरी

अंग्रेजों की विरासत के जैसे और जितने अवशेष कलकत्ता में बिखरे हुए हैं, संभवतः हिंदुस्तान के किसी अन्य शहर में नहीं हैं. उन्हें बहुत संभालकर रखा गया है. अंग्रेजियत की व्यतीत-गंध को सबसे अधिक आग्रह के साथ ओढ़े हुए है--बंगाल क्लब. चौरंगी से हट कर अब यह क्लब रसेल स्ट्रीट पर आ गया है. आधुनिक साज-सज्जा और सुविधाओं से संपन्न. 1827 ई. में स्थापित इस क्लब को ड्यूक ऑव एडिनबरा का स्वागत करने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है. स्वतंत्रता-प्राप्ति से पहले इसमें अंग्रेज अधिकारियों, सुप्रीम कौंसिल के सदस्यों और गिने-चुने रईसों का बोलबाला था. बाद में कुछ रियायत बरती जाने लगी. देशी और विदेशी सदस्यों का अनुपात क्रमशः चालीस और साठ प्रतिशत हो गया.

यहीं पॉल गुमर से मुलाकात हुई. मैंने उनके बारे में सुन रखा था. दुनिया भर के अच्छे-अच्छे क्लबों का कच्चा चिट्ठा उनके पास सुरक्षित है, स्मृति में--वैसे एक कत्थई रंग की छोटी-सी डायरी भी जेब में रखते हैं. डायरी की उम्र अपने मालिक से सिर्फ अठारह वर्ष कम है यानी कुल इकसठ साल. ऊपर के पृष्ठ पर सन् 1917 टंका हुआ है. मेरी गुजारिश पर पॉल गुमर कॉकटेल पार्टी छोड़कर निकल आये. मनु बैराठी के जरिये मेरा संदेश उन्हें मिल चुका था. बरामदे की एक कुर्सी पर बैठते हुए बोले, "मैं भी लेखक बनना चाहता था, लेकिन जब-जब लिखने की कोशिश की, भाषा ने साथ नहीं दिया और हिम्मत पस्त हो गयी. कैसे-कैसे तजुर्बे मिले हैं, जिंदगी में . . . एक पिटारा बन गया है, लेकिन अफसोस है कि वह कभी खुलकर सामने नहीं आ पायेगा. जो मेरा है . . . कितना ही क्यों न चाहूं, वह . . . दूसरों का नहीं बन सकता. वैसे . . . नाम नहीं लूंगा, किंतु बंगला के कई गल्पकार मुझसे 'कथानक' लेकर गये हैं, कुछ अंग्रेजी वाले भी . . .--सॉल बेलो से मिला हूं शिकागो के 'सेवन-ट्रीज क्लब' में और फिर मेरी दी हुई थीम पर उन्होंने एक लंबी कहानी लिखी . . . लेकिन मुझे किसी से संतोष नहीं हुआ. हो नहीं सकता है . . औरों के अपने अनुभव भी होते हैं, वे जुड़ जाते हैं और फिर वह कहानी अप्रामाणिक होकर फिसल जाती है. . . . "

पॉल गुमर देर तक आत्मालाप में बहते रहे. मैंने उन्हें रोका नहीं. यात्राओं के अद्भुत, रोमांचक प्रसंग. उनका नशा जबरदस्त होता है, करीब-करीब बेकाबू. अपने आप ही वह अपने से मुक्त हुए, फिर मुझसे किसी और दिन आने के लिए बोले, लेकिन मेरे पुनः विनम्र आग्रह पर थोड़े पिछले और क्लबों के संबंध में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ जानकारी दी.

"यूनान और रोम में. . . बंगाली जिसे अड्डेबाजी कहते हैं, उसके लिए 'हटेरिया' और 'सोडलिटा' जैसे कुछ मनोरंजन-घर थे. फ्रेडरिक के समय जर्मनी में 'क्लूबे' बने. . . आप यहां से प्रारंभ मान सकते हैं. लेकिन हेनरी चतुर्थ के जमाने का 'ले कुर्त दे बॉन कंपाने' सबसे पुराना क्लब कहा जाना चाहिए. बॉलिनब्रुक का सेटरडे क्लब 1711 ई. में खुला और उसके तुरंत बाद किंग्स हैड, किट-कैट, मर्मेड टैवर्न, हनोवर क्लब और अथेनियम ने खूब शोहरत हासिल की. 1749 में डॉ. जान्सन के 'आवी लेन क्लब' की इतनी चर्चा हुई कि उसे 'द क्लब' पुकारा जाने लगा. सर जेसुआ रेनॉल्ड्स, जेम्स बॉसवेल ऑलिवर गोल्ड स्मिथ, डेविड गैरिक और सर जॉन हा[illegible]न्स जैसी हस्तियों के जमघट के कारण वह बुद्धिजीवियों का घोंसला माना गया. हिंदुस्तान में, वैसे तो राजाओं और बादशाहों के . . . उनके खास दरबारियों के मेल-मिलन के लिए स्थान थे ही, किंतु लंदन-छाप क्लब लॉर्ड क्लाइव के 'रॉयल हट' से शुरू हुए. यह बंगाल क्लब उसी परंपरा में है . . ."

पॉल गुमर ने सिगार सुलगाया; "टालीगंज क्लब . . . पहले कंट्री क्लब कहते थे उसे, सन् 1885 में खुला. वह इलाका टीपू सुल्तान के कब्जे में था. 1781 ई. में वहीं जान्सन परिवार रहता था. कलकत्ता क्लब सन् 1905 ई. में, काशीपुर क्लब सन् 1906 में बने—ओह, सॉरी! इनसे भी पहले सेडरडे क्लब खुल चुका है सन् 1898 में. . आज तो लॉर्ड सिन्हा रोड है, वहां पर. सन् 1903 में वह वुड स्ट्रीट पर आ गया. पंजाब क्लब . . . 1930 में कैमक स्ट्रीट पर खुला था. फिर बालीगंज सर्कुलर रोड पर ले जाया गया. ब्रिटिश आर्मी के अफसरों ने 1938 में 'आर्डिनेंस क्लब' बनाया. लैंसडाउन रोड पर, हिंदुस्तान क्लब की नींव 1946 में पड़ी. और भी क्लब हैं, लेकिन वे. . . . अधूरे-से हैं. कोई किसी खेल के लिए है, तो कोई तैराकी या घुड़दौड़ के लिए. मसलन, 'कैलकटा साउथ क्लब'. . . टेनिसके लिए मशहूर है. टिल्डन, कोहेत, लियो हुड, रोजवल और सगुरा जैसे टेनिस के खिलाड़ी उस क्लब के मैदान में खेल चुके है, रॉयल कैलकटा गोल्फ क्लब, कैलकटा रोइंग क्लब, कैलकटा स्वीमिंग क्लब, रॉयल कैलकटा टर्फ क्लब, कैलकटा फुटबाल क्लब, कैलकटा क्रिकेट क्लब . . . खुद अपना परिचय दे देते हैं."

वह उठे, धुआं उड़ाते हुए. कान्फ्रेंस हॉल की तरफ बढ़ते हुए बोले, "कुछ और तरह के क्लब भी हैं. मकसद है, समाज-सेवा . . . लेकिन खेल-खेल में, हंसी-खुशी के साथ. 1922 में पॉल पी. हैरिस ने शिकागो में जो क्लब बनाया था, वह आज रोटरी क्लब के रूप में जाना जाता है. इसी तरह लॉयन्स क्लब 1917 में टेक्सास से प्रारंभ हुआ. ये दोनों क्लब आज सारी दुनिया में अपने सदस्य होने का दावा करते हैं."

हल्के हरे रंग की एक फियेट अंदर दाखिल हुई. उसमें से एक जापानी परिवार उतरा और उधर से आवाजें उठने लगीं, "हलो, मिस्टर पॉल! हाउ आर यू . . . . ."

पॉल गुमर सिगार को होंठों में दबाये-रखे मुस्कराये. हवा में हाथ हिलाया . . . मैंने धन्यवाद देकर उनसे विदा ली.

एक ठहरा हुआ आतंक

इतवार. एक खूबसूरत चौकोर मेज. ताश के पत्ते. उनके चौगिर्द बार-बार फेंटे गये चेहरे.

वह सुबह से क्लब में थे और जुआ खेल रहे थे. हार जाते थे, लेकिन उनकी बुझी आंखों में न उत्सुकता थी, न उछाह और चाह की कोई छाया.

खेलते-खेलते उनकी पलकें झपकने लगीं. वह मेज पर माथा टिकाकर सो गये. फुसफुसाहट हुई, "अब?"

"हां, इन्हें तो नींद आ गयी है."

"जागेंगे, तभी हिसाब करेंगे."

"खूब हारे हैं आज."

"हारने के लिए ही तो आये थे. इन पर . . जुनून सवार होता है."

"जूट में बहुत कमाया है इस साल."

"रंगून में एक होटल भी तो खोला है."

"होटल तो कई हैं इनके, इटली में, ब्राजील में, स्पेन में . . . "

"बीवी को छोड़ दिया है—"

"तीन और हैं अभी. पहली को. . . छोड़ा है, वह बिहार के किसी राजघराने से है."

"कोई कह रहा था, ये चुनाव लड़ने वाले हैं."

"नहीं, चुनाव-वुनाव के चक्कर में कभी नहीं पड़ेंगे. वैसे ही एम. पी. और मिनिस्टर हाजरी भरते हैं इनकी."

"तुमने इनके घर का स्वीमिंग-पूल देखा है?"

"नहीं, मुझे इतनी लिफ्ट नहीं मिली इनसे."

"इस क्लब के ताल से चौगुना बड़ा है. पानी के जहाज की शेप में बनाया गया है, दो तल्ले का. नीचे का हिस्सा तैरने के लिए. ऊपर के तल्ले पर बार है."

"बहुत पीते हैं."

"चौदह-पंद्रह पेग तो अभी पी चुके हैं."

"पीकर बीवी का डांस देखते हैं. इनकी एक बीवी बहुत अच्छी डांसर है. तेहरान में कैबरे करती थी. वहीं से लाये हैं."

हठात् . . . . अपने ही तेज खर्राटों की आवाज से वह हड़बड़ाकर जागे और होंठों पर सरक आयी लार पोंछते हुए खड़े हो गये. आसपास देखा. सेक्रेटरी को बुलाया, "वेंकट!"

एक सांवला-सा अधेड़ व्यक्ति दुलकी चाल से उनकी बगल में आ खड़ा हुआ.

"इन लोगों का . . . जो भी बनता है चुका दो!"

वह डगमगाते हुए चल पड़े. डाइनिंग हॉल से एक युवती दौड़ती हुई आयी. उसने उनकी बांह थाम ली.

कार में जाकर बैठे. युवती के कंधे पर सिर टिकाये. अधसोये. सहसा खर्राटे खींच लेते हुए. उनकी लार युवती के कंधे पर से होती फिसलने लगी.

मैं सीढ़ियों पर खड़ा था. देख रहा था. युवती से नजरें मिलीं. नहीं, वहां कुछ नहीं था. न शर्म, न ग्लानि. वह चेहरा जो सुंदर और आकर्षक तो था . . . किंतु पत्थर का था—एकदम तराशा हुआ.

फिर एक रोज मैंने उन्हें दूसरे क्लब में पाया. वह 'रूना-लैला' के प्रोग्राम में आये थे और स्टेज पर किसी मंत्री के साथ व्यस्त थे.

तीसरी बार एक अन्य क्लब में उनसे भेंट हुई. बंगला फिल्मों की एक अभिनेत्री

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

…विवाह हुआ था. वह उसके 'धर्म-पिता' …ते हुए थे. इसलिए अपनी ओर से दावत …र रहे थे. बहुत शानदार इंतजाम था …लेकिन—वह किसी बात पर भन्नाये हुए. …. पत्रकारों का ग्रुप जोर-जोर से बातें …कर रहा था. उन्होंने पास आकर डांटा, "आप लोग शोर मत मचाइये!"

सब सहम गये और बगलें झांकने लगे.

तभी सुगंधित दुग्ध का शीतल पेय 'सर्व' होने लगा. उन्होंने एक बोतल हाथ में लेकर देखी और चीखे, "यह ठंडा क्यों नहीं हुआ अभी तक?"

मैनेजर भागकर आया, गिड़गिड़ाया, "काफी ठंडा है, सर!"

"खाक!" उनका गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ गया, "मुझे अक्ल सिखाते हो!"

वह मुड़े. हुक्म दिया, "इसे सर्व मत करो. सारी बोतलें हौज में फेंक दो . . . . समझते क्या हैं, मैं यह क्लब बंद करवा दूंगा.

मैनेजर डर के मारे पीला पड़ गया. दूध की बोतलें हौज में फेंक दी गयीं, तत्काल . . . उसी समय हिंदी फिल्मों के एक लोकप्रिय हीरो ने हाथ जोड़े-जोड़े प्रवेश किया. त्यौरियां चढ़ाये-चढ़ाये ही उन्होंने गर्दन हिलाकर उसका सलाम कबूल किया.

हाल ही में, जब दंडकारण्य के शरणार्थियों ने शहीद मीनार के मैदान में पड़ाव डाला, तो अचानक फिर उनके दर्शन हो गये.

वह अपनी इंपोर्टेड कार में कुछ विदेशियों को भरकर लाये थे और उन्हें शरणार्थियों के 'दृश्य' दिखला रहे थे. मुझे सामने पाकर पलभर के लिए ठिठके, फिर रूखी आवाज में बोले, "हलो, कैसे हो?"

एक स्त्री पानी में सत्तू घोल कर गोद के बच्चे को पिला रही थी. ह्विस्की के पसीने से भीगे अपने थुलथुल चेहरे को रूमाल से पोंछते हुए वह उसके पास रुके, "तुम इसे दूध क्यों नहीं पिलाती हो?"

स्त्री ने कोई जवाब नहीं दिया. सिर झुकाते, चम्मच से बच्चे को सत्तू पिलाने की चेष्टा करती रही.

"ए, सुना नहीं तुमने? इसको दूध पिलाओ . . . . . बहरी हो क्या?"

इस बार स्त्री ने उनकी तरफ देखा. वे धधकती हुई निगाहें, वह स्वाभिमान, वह ऊंचाई! मुझे लगा, बरसों-बरसों बाद मैं इतने पवित्र, इतने उज्वल ताप से भरे चेहरे को 'चीन्ह' रहा हूं.

"बेशी बोक-बोक कोरे ना . . एखाने दिके पालिये जाव—ज्यादा बकबक करने की जरूरत नहीं . . . . भागो यहां से!"

उन्होंने सकपकाकर पीछे कदम रखा और तेजी से चल दिये. मुझे निकट पाकर खिसियानी हंसी में ढल गये, "मुझे इनके लिए कुछ करना पड़ेगा . . . . अपने क्लब से खाने-पीने का थोड़ा-बहुत सामान मैं भिजवा दूंगा . . . . आफ्टर ऑल दे आर अवर पीपुल—"

ये लोग और वे लोग

अतिमा ने फोन पर एक क्लब का जिक्र किया और कहा कि कल सवेरे साढ़े आठ बजे वहां से काठमांडू के लिए कार-रैली शुरू होगी, तुम पहुंच जाना . . . . नजारा देखना!

और, नजारा मैंने देखा.

दूल्हों की तरह सजे हुए कार-चालक. शुभचिंतकों के उपहार और पत्नियों-प्रेमिकाओं के चुंबन स्वीकार करते हुए. धूप में कारों का रंग-रोगन ऐसा चमक रहा था कि लगा, उन्हें लगातार ताकते रहो तो आंखें पथरा सकती हैं.

मिठाइयां बांटी जा रही थीं. गुब्बारे उड़ाये जा रहे थे. मनपसंद गवैयों के रिकार्ड बजा कर रूमानियत बिखेरने का कारज हो रहा था. माइक पर एक सज्जन कारों की खूबियों और उनके अलग-अलग मॉडलों का बखान कर रहे थे.

तभी हलचल बढ़ी. एक बम फटने का सा धड़ाका हुआ. कारें चल पड़ीं. दर्शक तालियां पीटने लगे. "ऑल द बेस्ट . . . ." के साथ हाय-हुई की चीख-पुकार मच गयी.

कारों को अभी एक गोल घेरे का चक्कर लगाना था. वे धीमे-धीमे सरक रही थीं.

मैं बाहर आ गया. सड़क पर. बस-स्टैंड की ओर चल पड़ा.

रास्ते में एक डबल-डेकर बस अड़ कर खड़ी थी. यात्री उतर कर पीछे से धक्के लगा रहे थे.

"जोर लगाओ, मार धक्का—" यहां भी एक हांफता हुआ शोर.

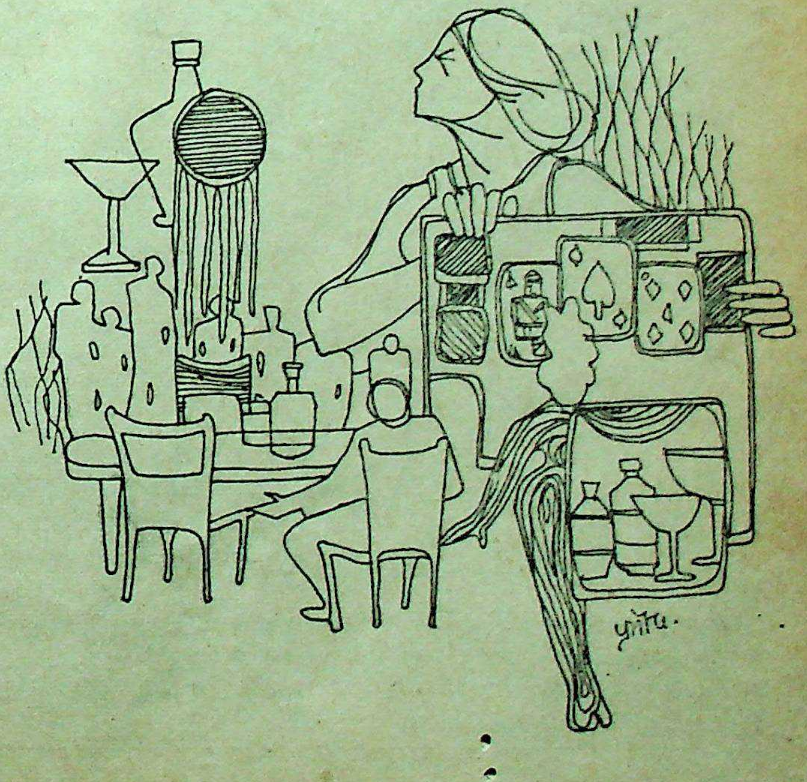

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी समय कारों का काफिला आया और ठप्प पड़ी हुई बस की बगल से गुजरने लगा. धक्का देने वाले उन्हें हैरत और हसरत से देखने लगे.

यह बस, वे कारें! ये लोग और वे लोग! ट्राम पकड़ने की सोचता हुआ मैं, इस आक्रामक नजारे को सह नहीं सका. . . .

मरे हुए लोगों का काफिला

ऋत्विक घटक खलासी टोला से पीकर आ रहे थे और अब उन्हें संभालना मुश्किल था.

"ही इज़ . . . आमार फाइनेंसर—" उन्होंने अपने साथ के व्यक्ति से मिलवाया और फिर मुझे आंखें सिकोड़कर देखा, "एंड दिस फैलो. . . . "वह चुप हो गये, एक क्षण बाद चौंके, "आंह . . . हिंदी स्टेज . . . आंह खूब भालो प्लेराइट . . . तोमार नाम की . . . आंह माथा खोराब होइ गियाछे . . . आंह की . . . मोनी मोदुकर..."

उनका फाइनेंसर हंसने लगा. बोला, "ऋत्विक मोशाय एक क्लब में ले चलने का आर्डर दिये हुए हैं मुझे. कहते हैं, वहां वर्मा का एक कंट्री लिकर पेश किया जाता है. डिनर वहीं लेंगे. आप भी चलिए."

ऋत्विक घटक भड़के, "मैंय कहता है ये श्शाला तो चलेगा ई . . इशका वाश्ते वो प्लेस बहूत अच्छा हैय. . .ही विल सी. . . हाउ वी आर डाइंग—वी इंडियंस . . . यस्स, वी मस्ट डाय . . . "

आशुतोष मुखर्जी रोड से गुजरते हुए देखा कि सड़क के बीचों-बीच एक औरत बेहोश पड़ी थी. मिनी बस टक्कर देकर भाग गयी है. औरत के सिर से खून बह रहा है . . .

एक एंबेसडर आयी, रुकी . . . जाने के लिए उसे रास्ता नहीं मिल रहा था. एक नीला सूट गाड़ी में से उतरा. उसने अपने ऊंची एड़ियों वाले नये ढब के बूटों से औरत को खिसकाकर किनारे किया. जगह बन गयी. एंबेसडर चली गयी. औरत पड़ी रही, माथे पर ताजा रक्त से भीगे बाल चिपकाये हुए . . . .

"वह मर रही है." टैक्सी में से झांक कर ऋत्विक बाबू के फाइनेंसर ने कहा.

"वी ऑल . . . हैव फिनिश्ड अवर लाइफ—" ऋत्विक बड़बड़ा रहे थे. चश्मे के शीशों के पीछे उनकी आंखों में भयावह शून्य! मैं कांप उठा.

क्लब में हंगामा था. चाय बागान के एक बड़े सूबेदार की पुत्रवधू ने कुछ चित्र बनाये थे. उनकी प्रदर्शनी लगी हुई थी. कला-समीक्षकों की टोली हर चित्र पर मुक्त प्रशंसाओं का गंधक लगाती हुई मत्त मंडरा रही थी. सूबेदार ने एक लंबी मेज पर स्कॉच, वोदका, कोन्याक, ब्रांडी . . . किस्म-किस्म की शराब की बहार ला दी थी.

"हलो स्वीटी!" ऋत्विक की लड़

नन्हे मुन्नों के लिये बिना-अल्कोहल प्राकृतिक औषधि.

हमदर्द ग्राइप वॉटर विशेष रूप से नन्हे बच्चों के लिए तैयार किया गया है। यह अल्कोहल रहित है। इसमें अन्य कोई ऐसा कैमिकल सम्मिलित नहीं है जो हानि पहुंचाये।
हमदर्द ग्राइप वॉटर में ऐसे आरोग्य होने योग्य प्राकृतिक द्रव्य आधुनिक तरीके से सम्मिलित हैं जो नन्हे बच्चों को पेट की खराबियों से सुरक्षित रखते है। और पाचन क्रिया को ठीक करते है।

नन्हे बच्चों के लिये प्राकृतिक इलाज

हमदर्द ग्राइप वॉटर

हमदर्द

HD 4911 H

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ती हुई आवाज में व्यंग्य और वितृष्णा ...कसैलापन उभर आया, "हाउ आर ...र हसबैंड्स?"

...सूबेदार से सटकर खड़ी हुई लड़की ... हो गयी.

"यह मेरी बेटी है," सूबेदार ने हम ...ों की ओर मुड़कर लड़की की पीठ ... हाथ रखा, फिर ऋत्विक बाबू से ..., "घटक साहब, क्या कह रहे हैं ...? . . . होश में आइये. स्वीटी की अभी शादी ही नहीं हुई. वैसे ... मैं ...नी अच्छे रिश्ते की तलाश में हूं."

"ओह . . . पुअर फादर . . . यू डोंट ...योर डॉटर . . . शी हैज ए बिग ...मली—" ऋत्विक एक कुर्सी पर ढह ..., "जदि हम उशको अपनी पिक्चर में ...ठो रोल दे देता तो वो हमारे शंग लग ...ता . . माइ गॉड! बहूत फ्लर्ट हैय."

"शी हैज गट्स . . . कैलकटा की सबसे ...र्ट सुंदरी . . . आइ मीन रंभा है स्वीटी ..." एक क्रिटिक नकियाये स्वर में चहके. ...ेदार की पुत्रवधू ने, जो बार-बार ...टिस्ट की तरह भावुकतापूर्ण मुद्राएं ...ा रही थी, उनकी ओर कटखनी दृष्टि ...ेखा.

...शराब की मेज पर उमंगों और आवेगों ...जुमले खनखना रहे थे. अपने एक चित्र ...ास आर्टिस्ट ने एक नया पोज़ बनाया ...र विग के घने-कजरारे बाल खोलकर ...ों पर लहरा दिये.

स्वीटी ने उनकी इस अदा पर मुंह ...चकाया, फिर अपने पापा की गरिमा-...ी तोंद को उंगली से खोदकर बोली, ...गली दफा . . . हम अपनी पेंटिंग्ज ... प्रदर्शनी लगायेंगे."

"श्योर, श्योर . . . तुम अपनी भाभी ...भी अच्छी कलाकार बन सकती हो!" ...ेदार ने टाई की गांठ ठीक की.

"वो कुछ नहीं जानती है, उसको तो ... पकड़ना ही नहीं आता." स्वीटी तुनक ...ी, "हमें सब मालूम है . . . ये पेंटिंग्ज ...भी ने एक स्कूल के ड्राइंग-मास्टर से ...रीदी हैं, काफी पैसा देकर और नीचे, ... जगह अपना नाम लिखवा लिया है."

सूबेदार की पुत्रवधू के कानों में झनक ... गयी. आर्टिस्ट की कोमल-ललित ...गिमा तजकर वह कोप-भरी कैकेयी-सी ...कती हुई आयी. ...ौर स्वीटी को एक कोने में खींच ले गयी.

वहां ननद-भाभी का संवाद बाकायदा आरंभ हो गया . . .

"कैलकटा के क्लबवालाज . . . बहुत ग्रेट हैंय, अशली जीनियस!" तमाचे की तरह करारी, ऋत्विक घटक की यह घोषणा कभी कलकत्ता के क्लबों में गूंजा करती थी, "श्शाले . . . पैशा देकर शोब परचेज़ कर लेते हैंय."

महान लोग

उनके इस कथन में जितनी कटुता थी, उतनी ही सच्चाई भी. जिन्हें कैमरा उठाना नहीं आता, उनके द्वारा लिये गये छायाचित्रों की प्रदर्शनियां क्लबों में होती रहती हैं. अखबारों में आकर्षक विज्ञापन छपते रहते हैं. जो सितार को छूते हुए डरते हैं, वे संगीत-सभाओं के मोटे-मोटे अक्षरों में 'कन्वीनर' होते हैं. जिनका एक्टिंग और स्टेज से कोई वास्ता नहीं, उनका नाम निर्देशक की जगह छपता है. कभी कोई सेठ या सेठानी नाटक में दो-चार डॉयलाग बोल देते हैं तो उनके अभिनय की तुलना उत्तम कुमार और सुचित्रा सेन से की जाती है. एक क्लब में कवयित्रियों का सम्मेलन हो रहा था. आभूषणों से लदी-फदी एक कुबेर-कन्या मंच पर आयी और माइक को झाड़ू की तरह उठाकर बोली, "ल्यो, इब म्हारी कवीता सुणो!"

किराये के करतल-ध्वनिकारों को बड़े पैमाने पर बुलाकर हॉल में बिठा दिया गया था. तालियों की गड़गड़ाहट ने कवयित्री का हौसला इतना ज्यादा बढ़ा दिया कि उन्होंने एक-एक पंक्ति को कई-कई बार पढ़ा. ज्यों ही उनकी कविता खत्म हुई, करतल-ध्वनिकार उठकर चले गये और हॉल खाली हो गया.

एक सिरफिरा श्रोता कवयित्री के पास पहुंचा और बोला, "जो कविता आपने सुनायी, उसमें से अगर मारवाड़ीपन को निकाल दें तो वह महादेवी वर्मा की है."

"मैं किस्सी महादेई को नई जाणती, कवीता म्हारी है." कवयित्री ने नाक की नथ घुमाते हुए कहा.

"कविता आपकी नहीं."

"चपर-चपर मत करो. ईस कवीता पर तो अब्बी मन्नै किलब की तर्फ सैं ईनाम भी मिलणै वाला है . . . खुद कप बणवाके दिया है आज ई—"

"लेकिन यह ज्यादती है . . . मैं मंच पर जाकर इस साहित्यिक चोरी की निंदा करूंगा."

"क्यूं करोगे तुम्म निंदा? ल्यो, ये सौ रुपैये ले जावो और अपणे घर जाके अराम करो."

कवयित्री ने तुरंत बैग में से एक कड़कड़ाता नोट निकालकर फेंक दिया. श्रोता संतुष्ट होकर चला गया.

कुछ समय पूर्व, एक क्लब में तैराकी प्रतियोगिता हुई. राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति अर्जित करने वाली एक बंग-महिला जानबूझकर दूसरे नंबर पर आयी. पहले नंबर पर, एक धनपति की सुपुत्री. मैंने बंग-महिला को छेड़ा-कुरेदा तो बोलीं, "क्या फर्क पड़ता है इससे . . . वह बेचारी बहुत भली है. अपने बाप से कहकर उसने मेरे पति को एक टी-कंपनी में बढ़िया नौकरी दिलवा दी है . . "

अकेलेपन के परकोटे

"हाउ टु किल द टाइम . . . माइ प्रॉब्लम इज़ दिस—आय'म द विक्टिम ऑव लोनलीनेस!"

वे अलग-अलग क्लबों के कोने थामे बैठे हैं और उनमें से हर एक के होंठों पर यही बुदबुदाहट उभरती है—कभी पीने के बाद, कभी अपने घरों के लिए लौटने से पहले. . . . उनकी समस्या है कि समय को कैसे हलाल करें और फिर किस तरह अपने अकेलेपन के परकोटे में स्वयं को छुपाकर बचा लें. सौदों, समझौतों, हीन-ग्रंथियों और अपराध-बोध की प्रेतछायाओं से छुटकारा पाने के लिए वे नशे की नदी में कूद पड़ते हैं, घुड़दौड़ में दांव लगाते हैं, पराये बिस्तरों के नीचे नोटों के बंडल फेंक आते हैं, कला-साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में घुस जाते हैं—लेकिन वक्त . . . . जंगली जानवर की तरह सदा उनका पीछा करता है. वह मरता नहीं है, सिर्फ मरने का भ्रम देता है और अपने सींगों से, खुरों से . . . उन्हें निरंतर रौंदता रहता है! ! □

● 7/2, राजेंद्र नगर, नयी दिल्ली-60.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेपाली क्रांति नया दौर!

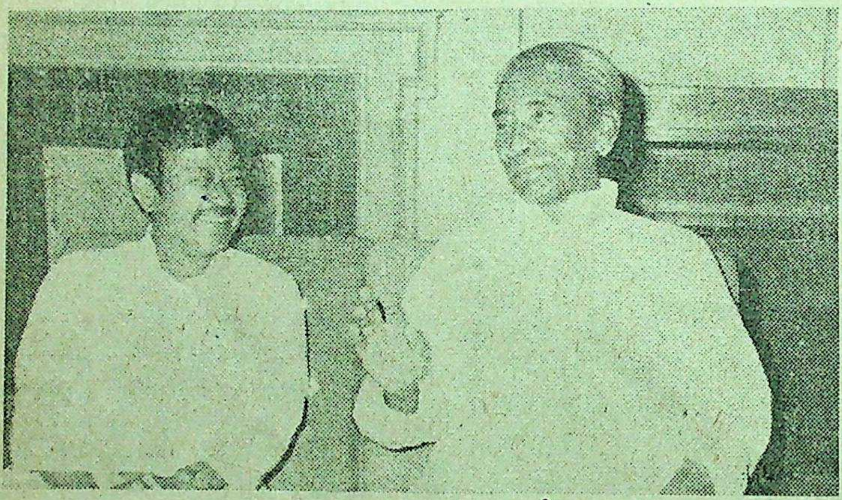

सभी चित्रों के प्रस्तोता: चंचल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

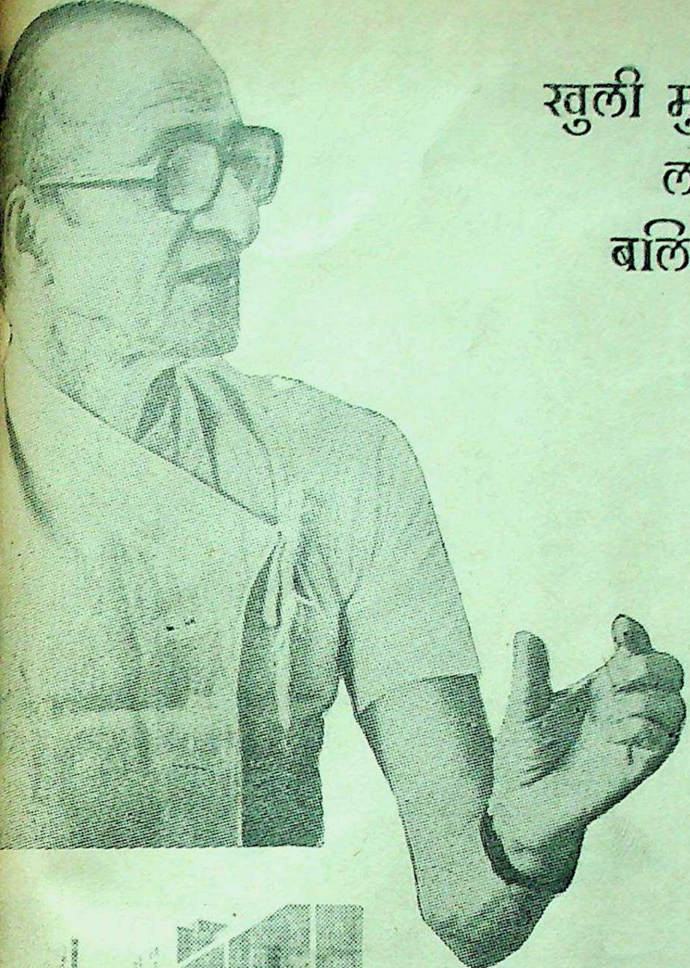

खुली मुस्कान के लिए लोकशाही
लोकशाही के लिए बलिदान
बलिदान के लिए सही नेतृत्व

नेपाल का युवा-मानस प्रजातंत्र और मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए कटिबद्ध हो चुका है. खुली मुस्कान के लिए लोकशाही और लोकशाही के लिए संघर्ष के संवाहक बने ये युवा अपनी आस्था पर अडिग हैं.

इस महत् बलिदान की सार्थकता के लिए जिस सही, सटीक और विश्लेषणात्मक नेतृत्व की आवश्यकता है, वह नेपाल कांग्रेस के आधारस्तंभ और नेपाली जनता की भावनाओं के परिचायक श्री बी. पी. कोइराला ने दिया है.

दुर्गा पोखरेल युवा-मानस के इन क्रांतिकारी कदमों की अगुवा रही हैं. बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के छात्रनेता श्री चंचल पिछले दिनों नेपाल गए और वहां क्रांति के इन संवाहकों से मुलाकात की. उन्होंने वहां जो देखा उसकी एक फोटो झांकी यहां प्रस्तुत है.

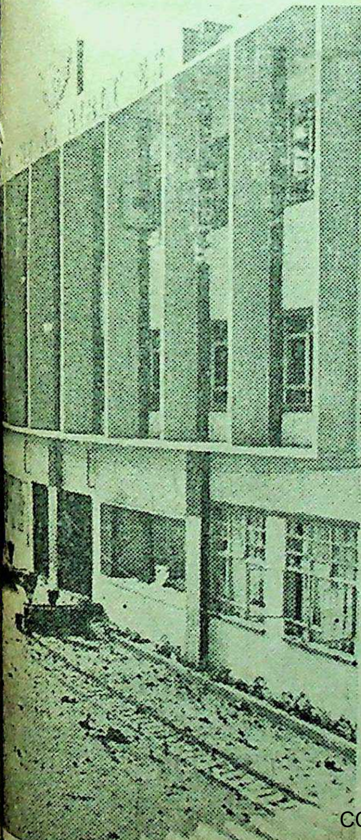

[चित्र : बाएं ऊपर से नीचे]

1. नेपाल नरेश वीरेंद्र वीर विक्रम शाह. साथ में प्रजातंत्र के लिए खुली मुस्कान.
2. नेपाली कांग्रेस के प्रमुख नेता श्री गणेशमान सिंह एक कार्यकर्त्ता के साथ.
3. नेपाली युवा आंदोलन में प्रमुख भूमिका निभाने वाली दुर्गा पोखरेल के साथ चंचल.
4. सड़कों पर युवा क्रांति के संवाहक.

[चित्र : इस पृष्ठ पर]

5. श्री वी. पी. कोइराला : प्रजातंत्र की स्थापना के लिए संघर्ष.
6. रॉयल नेपाल विमान सेवा भवन : टूटने के बाद.
7. 'गोरखा पत्र' की जलती हुई इमारत.

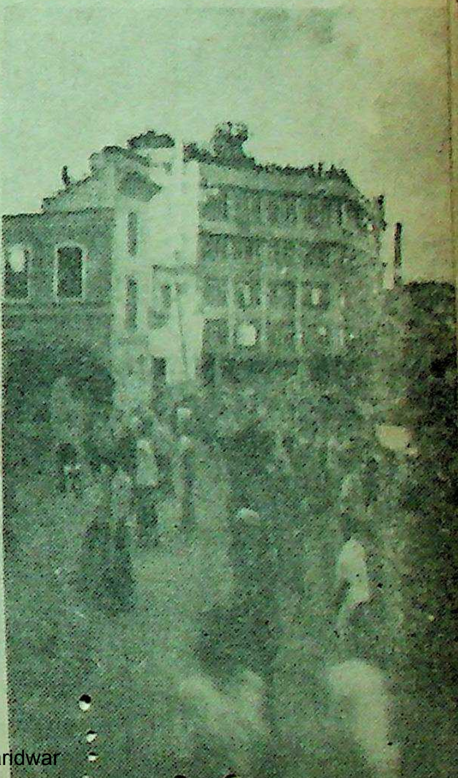

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सैंडोज इंडिया

स्वनियंत्रित, दिन और तिथि, चाबी वाली जेंट्स और लेडीज

घड़ियां

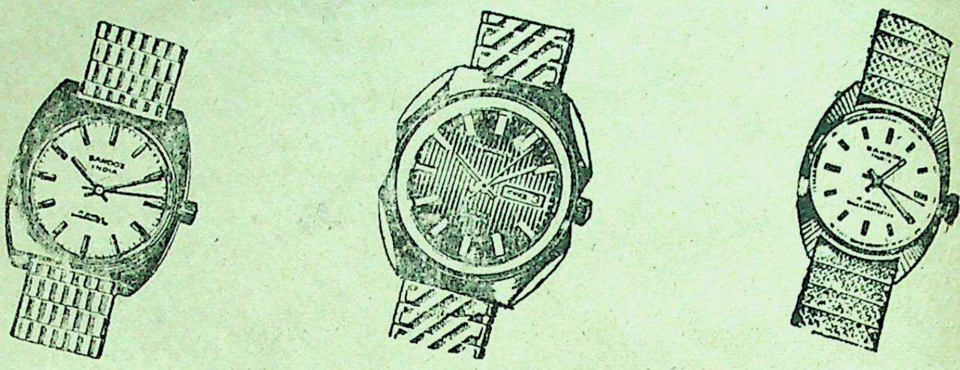

सभी प्रमुख घड़ी स्टोरों पर उपलब्ध

सेल्स आफिस : ११३९ चांदनी चौक, दिल्ली–११०००६

मुफ्त ! मुफ्त !! मुफ्त !!!

हमारी कंपनी ने पूरे हिंदुस्तान में बहुत नाम कमाया है. पांच साल गारंटी का माल पहले पहल हमने ही बनाया है. पंद्रह साल की कोशिश और तजुर्बे के बाद हमने यह माल बनाया है. हिंदुस्तान की तमाम कंपनियों में हमारी कंपनी एकदम [illegible] है. हमारी कंपनी के समस्त जेवरों की सूची तथा उनके मूल्य आप घर बैठे ही मुफ्त मंगा सकते हैं. हमारे बहुमूल्य केटलाग [illegible] देखकर आप अपनी मनपसंद चीज़ सिर्फ नंबर लिखकर वी.पी.पी. द्वारा मंगा सकते हैं.

पूरे हिन्दुस्तान में हमें अनुभवी एजेंटों की जरूरत है।

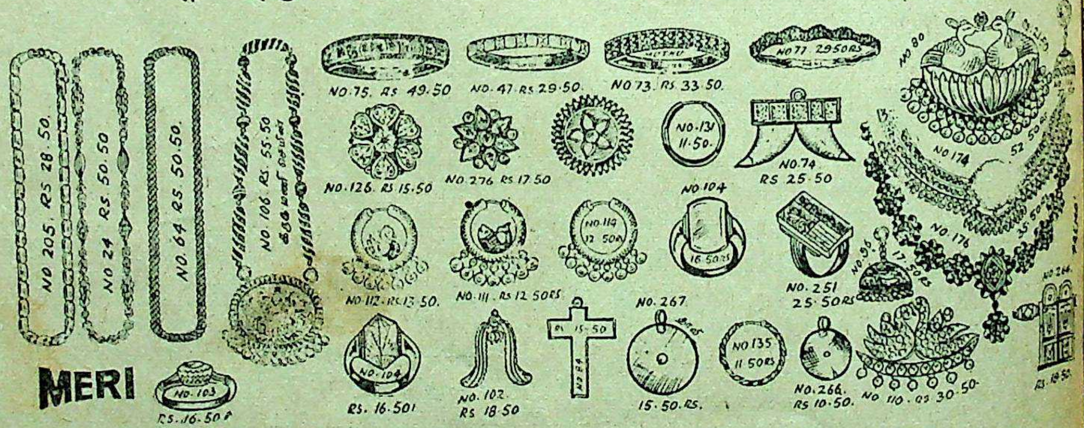

MERI GOLD COVERING WORKS (ESTD : 1963)
P. O. Box 1405 No. 14 RANGANATHAN ST., T-NAGAR, MADRAS-600017

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपनों की गंध

▪ सरोज सक्सेना

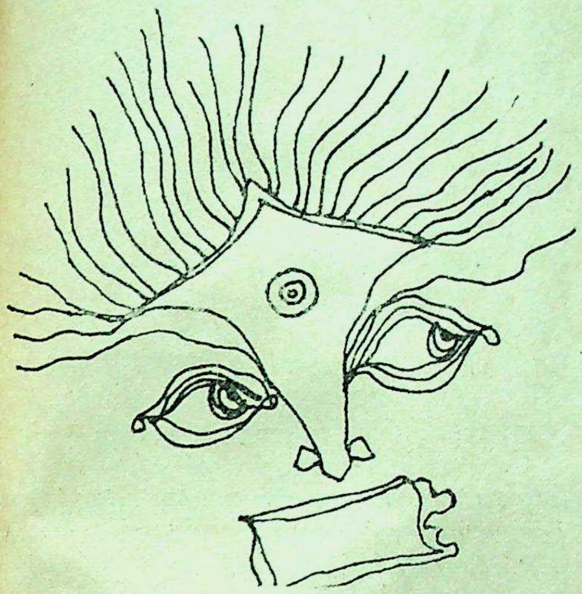

देखिये श्रीमती गुप्ता, आप अपना इलाज ठीक से करवाइये . . . वर्ना इस बीमारी की हालत में आपको ...करी से हाथ धोना पड़ सकता है. आपका घर आपकी नौकरी ...सहारे चलता है. . . . .मैं आपके हालात जानता हूं. आपके पति ... ही बेकार बैठे हैं, कोई काम-धाम नहीं करते. . .इसलिए ...ले भी कई बार आपकी गलतियां नज़रअंदाज कर चुका . . . . वरना तो. . . . .!"

बॉस की डांट-डपट अब तक उसके दिमाग पर हथौड़े ...सा रही थी. दफ्तर से लौटकर वह ...नघुटी-सी कमरे में ...कर विस्तर पर पस्त हो गयी. रह-रहकर उसे अपने पति सुदीप ... ताव आने लगा.

"रंजना, ओ रंजना ! लेट क्यों गयी ? उठो, कितना काम ...है!" सुदीप की रोषभरी पुकार ने उसे और भी भड़का दिया. ... उससे नफरत-सी हो आयी. मन एकदम विद्रोह के लिए ...कार कर उठा. परंतु वह जबरन गुस्सा पी गयी और कोई ...व न देकर करवट बदल ली जैसे जहर पी लिया हो!

...सुबह वह घर से चली थी तो उसकी तबीयत ठीक नहीं ... सोचा था, आज की छुट्टी ले लेगी. लेकिन फिर ख़्याल आया, ... छुट्टी ली तो एक दिन की पगार फालतू में कट जायेगी. ...के लिए वह तैयार नहीं थी. सुदीप के बेरोजगार होने से ...का और कोई साधन भी तो नहीं था. इसलिए वह समय पर दफ्तर पहुंच गयी और पिछले दिन के पत्र टाइप करने लगी.

वह जल्दी से जल्दी काम समाप्त करना चाहती थी, किंतु मन के बवाल ने उसे चैन से काम नहीं करने दिया. और फिर जिस बात का उसे अंदेशा था, वही सामने आ गयी. आज कड़े शब्दों में साहब ने उसे चेतावनी दे दी थी. सुनते ही वह तिलमिला कर रह गयी. . . . क्या करती? कोई चारा भी तो नहीं था! उसकी अवस्था उस समय उस मरियल सांप जैसी थी जो फुफकारना चाहकर भी नहीं फुफकार सकता. उसकी पूंछ पकड़ कर उसे जोर का एक झटका दे दिया गया. उसका अंग चूर-चूर हो गया था. जिसने शक्ति रहते कभी अपने अस्तित्व से सबको डराया ही था, वही चुपचाप शांत व लाचार पड़ा था.

पिता के अत्यधिक लाड़-प्यार ने उसे बचपन से ही मनमानी करने का अधिकार दिया था. कोई भी उसकी इच्छा के विरुद्ध जाता या उसका कहा न मानता तो वह बिफर उठती थी. सबका अपमान करना उसकी एक आदत-सी बन चुकी थी. वह सदा यही समझती थी कि वह स्वयं जो कहती या करती है, वही सच है, वही ठीक है. अपने इसी अहं के आगे उसने सबको अपने समक्ष झुकने पर मजबूर कर दिया था, और यही कारण था कि उसके क्रोध को देखकर सभी डरते थे. किसी में जुर्रत नहीं थी उसकी बात टालने की. एकाध बार छोटे भाई या बहन ने कुछ बोलने की हिम्मत भी की तो उसने सारे घर को चिल्ला-चिल्लाकर सिर पर उठा लिया था. गुस्से में जो भी घर का सामान उसके सामने आया, उठाकर फेंक दिया. उसने कभी परवाह नहीं की कि कितना बचेगा कितना टूटेगा!

▣

उसने कभी भी अपनी मां की भावनाओं की चिंता नहीं की. पिताजी की भावनाओं की चिंता नहीं की जिन्होंने उसे इतना अधिक लाड़-प्यार दिया था. उसने कभी भी यह नहीं सोचा कि उसकी इन आदतों से उनके मन को ठेस लग सकती है. उसने तो सदा यही जाना, जैसे भी हो, जिस कीमत पर भी हो, उन दोनों को उसकी बात माननी ही है. कभी किसी को उसने अपनी इच्छा के विरुद्ध न खाने दिया, न पहनने दिया. उसकी उच्छृंखलता व क्रोध के कारण घर के सब सदस्य सहमे-सहमे-से रहते थे. उसके उदंड होने की एक वजह यह भी थी कि वह कतई सुंदर न थी. बहुत ही मामूली-सी लड़की थी. इसीलिए पिता ने उसे पढ़ाने-लिखाने में कोई कसर उठा न रखी. उन्हें पूर्ण विश्वास था कि उनकी लाड़ली की शादी आसानी से अच्छी तरह हो जायेगी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन उसकी बढ़ती उम्र के साथ-साथ उनकी आशाएं भी मरती गयीं. उसकी शादी कहीं भी न हो सकी थी. हारकर पिता ने भैया की शादी पहले कर दी थी.

भाभी का खिला रूप देखकर वह अपने-आप में हीन भावना का शिकार होती गयी. मारे डाह के उसने उन्हें भी चैन से नहीं बैठने दिया था. सदा उनके साथ किसी न किसी कारण को लेकर झगड़े खड़े करती रही. मगर भाभी एकदम शांत स्वभाव की थीं. उन्होंने हमेशा चुप रहकर उसे टाल दिया. अपनी शादी से पहले वह कभी भी तो भैया-भाभी को पास बैठे देखकर सुख की सांस न ले सकी और न उन्हें लेने दी थी. कोई न कोई क्लेश, कोई न कोई दंश मुट्ठी खोलकर उनके कलेजे में उतार देती. . . .!

"रंजना सात बज चुके हैं. बच्चे भूखे हैं, उठना नहीं है क्या!" सुदीप की कर्कश आवाज ने उसे चौंका दिया. आंखें खोलकर देखा, सुदीप वहीं पास खड़ा चिल्ला रहा था. उसे कोई जवाब न देकर वह चुपचाप रसोई की तरफ उठकर चल दी.

उसके हाथ यंत्रवत चल रहे थे, किंतु मन बहुत उदास था. विचारों का सिलसिला था जो कहीं टूटने में ही नहीं आ रहा था.... जबसे वह ऑफिस से आयी थी, सुदीप ने एक बार भी तो उसके पास आत्मीयता से बैठकर नहीं पूछा था कि उसे क्या हुआ है. क्या सुदीप का यह फर्ज नहीं था, उसकी तकलीफ सुने. . . . उसकी समस्या पर गौर करे. . . !. . .सुदीप के साथ उसकी शादी भी उसे एक हादसा ही लगती है.

▣

शायद उसके रंग-रूप की बनिस्बत सुदीप उसकी नौकरी और आमदनी से अधिक प्रभावित हुआ था. उसे बिना देखे शादी की बात सुदीप के मां-बाप ने पक्की कर दी थी. नौकरी छोड़ देगी या पति स्वयं ही उसे नौकरी कराना पसंद नहीं करेगा. अभी तो वह सबकी इच्छा के विरुद्ध इसलिए नौकरी करती है कि उन पर हावी बनी रहे. सुदीप की आमदनी गुजर भर के लिए पर्याप्त होगी. बहुत मुश्किल से उसकी शादी हुई थी. उम्र भी काफी हो चुकी थी. उसने तो शादी का ख्याल ही छोड़ दिया था.

नयी आशाओं और उमंगों के बीच भाभी के साथ की हुई कटुता धुलती जा रही थी. उनके प्रति किये हुये अन्याय को अब न्याय की कसौटी पर वह तौलने लगी, और जब सच्चाई से उसका साक्षात्कार हुआ तो वह स्वयं ही अपने दुर्व्यवहार के कारण दुखी हो उठी.

उसने घर की स्वामिनी बनने का जो स्वप्न देखा था, पूरा न हो सका, क्योंकि कुछ ही अर्से बाद सुदीप ने अपनी सर्विस उसे यह आश्वासन दिलाते हुए छोड़ दी कि वह कोई दूसरा काम करेगा. लेकिन सुदीप वह भी न कर सका. जब भी वह कहती, सुदीप कोई न कोई बहाना करके टालता चला गया. आज-कल करते महीने, साल बनने लगे, किंतु सुदीप टस से मस नहीं हुआ. उसका वही रवैय. रहता. वह दिनभर या तो पंखे के नीचे सोया रहता, या फिर मित्रों के साथ ताश खेलता या फिर रात को उसके पास सिमटकर प्यार की बड़ी-बड़ी बातें करता. वह सुदीप का यह रूप समझ नहीं पा रही थी. . . . उन दोनों के प्यार का अंकुर भी अब फूटने को था. अतः उसने कितनी ही बार सुदीप को एप्लीकेशन देकर इन्टरव्यू में जाने के लिए उकसाया. वह कामयाब न हो सकी. हारकर उसे चुप रह जाना पड़ा. परिस्थितियों से उसने समझौता कर लिया था.

वह अब यह अच्छी तरह समझ गयी थी. जो सर्विस कभी अपने पिता के घर में अपना मन बहलाने का व आर्थिक... जमाने का साधन समझी थी, वही अब उसकी आजीविका का एकमात्र साधन बन सामने आ खड़ी हुई है.

हर दो साल के बाद वह छुट्टी लेकर दो महीने घर आराम करती और फिर बच्चा सुदीप की गोद में डाल वह काम पर निकल जाती. दोनों ने ही अपना-अपना अधिकार बांट लिया था. सुदीप बच्चे पालता था और वह ऑफिस की देखभाल करती थी. . . . उसने जो एक काल्पनिक महल बनाया था, वह अब निराशा के खंडहरों में परिवर्तित होता नजर आया.

उसका सारा स्वाभिमान चूर-चूर हो गया था. . . उसे समझ में नहीं आता था, वह क्यों इतनी शांत हो गयी है. किस कारण वह सुदीप से अपनी पराजय मान रही है, जो वही घर की अर्निंग मेंबर है. . . . .ढूंढ़ने से भी वह अपने प्रश्न का उत्तर नहीं पाती. . . . कहीं उसके प्रश्न का उत्तर यही नहीं कि सुदीप को छोड़कर भी तो उसके लिए अब कोई विकल्प नहीं ?. . . .इस हालत में यदि वह उससे अलग होती तब भी सब उसे ही बदनाम करेंगे. मां-बाप के घर भी अब उसके लिए जगह नहीं. और फिर अब वह उसके बच्चों का पिता तो बन गया है. . . सामाजिक मर्यादा भी तो उसे रखनी है. सुदीप कितना भी बेकार सही, किंतु समाज में पति नाम का साया भी रक्षण के लिए सिर पर चाहिए!

▣

"मम्मी बहुत भूख लगी है." छोटी मीना ने रोते हुए कहा.

उसने मीना की तरफ अपनी निगाह उठायी. वह धूल से ऊपर से नीचे तक सनी थी. कपड़े एकदम गंदे हो गये थे. मीना को देखते ही वह भभक उठी. सुदीप का सारा क्रोध उस पर भड़क उठा. उसने दांत पीसते हुए गुस्से में आकर दो थप्पड़ उसके गाल पर जड़ दिये, "जाओ मरो जाकर." मीना और चीख मारकर रोने लगी. सुदीप ने कमरे से बाहर आकर रोती हुई मीना को गोद में उठा लिया.

वह डबडबायी आंखों से मीना को देखती रही. उसकी आंखों में सहसा एक तस्वीर उभर आयी, नन्हें की. उसे लगा वर्षों पहले का छोटा भाई नन्हा उसके सामने मीना का रूप लेकर खड़ा हो गया. नन्हा ! . . . . वह एक दिन धूलभरे हाथ-पैरों से उसके सामने आकर खड़ा हो गया था. उस समय वह बहुत खुश था. बोला, "जीजी, हमने कबड्डी में फर्स्ट आकर यह मैडल जीता है."

अपने बड़प्पन में आकर उसने नन्हें की भावनाओं का जरा भी ख्याल नहीं किया था. उसे गंदा देखकर इसी तरह थप्पड़ मार दिया था. मार खाकर नन्हा कुछ देर तक तो जड़ ही बना रहा था. वह समझ नहीं सका था, अचानक जीजी ने क्यों मार दिया. वह कुछ समय तक अपलक देखता रहा. आंखों से आंसू निकलकर गालों पर मैली रेखा बनाते हुए नीचे ढुलकने लगे.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाभी ने झट से आकर उसे गोद में उठा लिया. उस दिन पहली बार भाभी उसके सामने गुस्से से लाल-पीली हो उठी थी, "नहीं इस तरह बच्चे को मारते हैं. यदि उसकी आंख पर लग जाती तो तुम्हारा क्या बिगड़ता!"

....वह हर पहली तारीख को घर का खर्च चलाने के लिए पूरी सैलरी सुदीप के हाथों में दे देती है. सुदीप ने सदा ही हंस कर खर्च हाथ में लिया है. उसने सुदीप के चेहरे पर कभी भी संकोच या शर्म की रेखा नहीं देखी. हां, उसने अवश्य वेतन देते समय एक प्रसव की पीड़ा अनुभव की है. दिन ब दिन वह ऑफिस व घर का काम तथा हर दो वर्ष बाद एक बच्चे को जन्म देकर टूटती चली गयी है....

आज की घटना से पहले वह सुदीप से कई मर्तबा अपनी तबीयत खराब होने की बात कह चुकी थी. वैसे उसने स्वयं भी सोचा था कि वह अकेली ही डॉक्टर को जाकर दिखायेगी. किंतु कुछ खर्च के कारण, कुछ समयाभाव के कारण और कुछ उसकी यह इच्छा कि सुदीप स्वयं उसे डॉक्टर को दिखाये, उसका इलाज कराये, वह टालती ही चली जा रही थी. लेकिन सुदीप की लापरवाही के कारण ही आज उसे अपमान सहना पड़ा!

.... वह समझ नहीं पाती, क्या करे ?....एक ऊहापोह की जिंदगी जी रही है. कभी वह एकदम शांत हो जाती है, कभी सुदीप की अवस्था देख उसका मन विद्रोही हो उठता है....

वह यह भी अच्छी तरह जानती है कि उसके पिता के घर में भी सुदीप को सब हेय समझते हैं. अब मित्रों में भी वह हिकारत की नजरों से देखा जाता है. वह स्वयं भी सुदीप के घर में रहते ऊब-ऊब जाती है. उसका दिल होता है कि वह स्वयं घर में रहकर अपनी गृहस्थी का प्रबंध करे, अपने बच्चों को देखे, और सुदीप पिता और पति का दायित्व संभाले. वह शाम को जब थका हुआ घर लौटे तो सजी-संवरी वह उसकी बाट जोहती मिले. उसकी थकान को अपनी मंद मुस्कान से बांटने का प्रयत्न करे...... मगर यह सुख उसकी तकदीर में नहीं.....

अपनी अवस्था देखकर उसे स्वयं पर आश्चर्य होता है, वह क्या थी और अब क्या हो गयी है! उसने यूं सुदीप के काम छोड़ने का बुरा नहीं माना था. जहां तक उससे हो सका, उसने अपना सारा मान-अपमान जलाकर राख कर दिया था.

उसने कभी अपने मित्रों की, समाज की परवाह नहीं की थी कि वह सुदीप के बारे में क्या कहते हैं. पर आज न जाने क्यों वह बॉस द्वारा किये हुए अपमान को सहन नहीं कर सकी! वह तिलमिला उठी है. सुदीप का अस्तित्व उसे एक लिजलिजाते केंचुये-सा लगा जिसे छूने में भी घिन आती है. पिता का घर होता तो इतना अपमान सहने की नौबत न आती. वह जमीन-आसमान के कुलाबे मिला देती ... पर यहां परिस्थितियों से बाध्य होकर उसने अपने स्वाभिमान को जलाकर बिल्कुल राख कर दिया है. वह एकदम हिम की तरह शांत हो गयी है. उसमें अब वह गर्मी नहीं है, वह तपिश नहीं है. अब उसके मिजाज की गर्मी देखने वाले उसके अपने माता-पिता नहीं हैं ... है तो केवल एक सुदीप नाम का व्यक्ति, जिसे समाज के सामने बहुत धूमधाम से बहुत तमन्नाओं से उसने पति रूप में स्वीकार किया था...

...यदि सुदीप किसी दुर्घटना से अपाहिज हो गया होता तब भी शायद वह इस कदर न टूटती. उस समय उसे सहारा देना उसका कर्तव्य होता, लेकिन सुदीप जैसी पर्सनैलिटी वाले व्यक्ति को, जो हाथ-पांव सलामत रहते सिर्फ अपने आराम के लिए अपाहिज-सा बन हर समय घर में रहकर बच्चे पालता है, देखकर शर्म से न जाने कितनी बार अपनी सहेलियों के आगे मरी है... एक बार उसकी सहेलियां घर में आयीं, उन्हें सुदीप का परिचय देते हुए ग्लानि-सी हुई, "कौन सी कन्सर्न में हैं आप ?" उन्होंने पूछ लिया.

"रंजना एंड कंपनी !" सुदीप का उत्तर सुन जल-भुन कर रह गयी. सुदीप ने जान-बूझकर उसे अपमानित करने का प्रयत्न किया था. सहेलियों के जाने के बाद वह स्वयं पर काबू न पा सकी. अपमान से पीड़ित वह सुदीप पर बरस पड़ी.

"तुमने रंजना एंड कंपनी क्यों कहा, तुम कोई और जवाब नहीं दे सकते थे."

"मैं और क्या कहता! ठीक ही तो जवाब दिया है." उसने विषैली मुस्कराहट छोड़ते हुए कहा.

"शर्म से डूब नहीं मरे. तुम्हारी पत्नी बाहर काम करती है और तुम घर में बैठे रहते हो."

"इसमें शर्म की क्या बात है. मैं यदि काम करता तो तुम भी तो घर में बैठकर खातीं. मैंने अपना कार्यक्षेत्र बांट लिया तो क्या हुआ !" सुदीप ने हंसकर जवाब दिया.

"औरत का क्षेत्र घर में शोभा देता है. और अगर नौकरी भी करती है तो पति भी तो साथ में करता है. कोई तुम्हारी तरह बशर्मी से तो नहीं खाता."

"इससे क्या हुआ! आज तो नारी बाहर काम करती है, और मैं आधुनिक पति हूं इसलिए घर में बैठकर पत्नी की कमाई खाता हूं." सुदीप के तर्कों में बेशर्मी-जहालत की बू देखकर उसने चुप रह जाना ही ठीक समझा था. इससे अधिक अपमान उसका और हो नहीं सकता था.

तवे पर रोटी जलने की बू सारे घर में फैलते ही सुदीप की कर्कश आवाज़ ने उसे फिर चौंका दिया था, "रंजना! जान पड़ता है आज तुम्हारा दिमाग ठिकाने नहीं है, कोई काम ठीक से नहीं कर रही हो. कुछ दिनों से तुम्हें बहुत उखड़ा-उखड़ा देख रहा हूं. लेकिन आज जैसा तो तुम्हें कभी नहीं देखा, तबीयत तो ठीक है ?"

उसकी समझ में नहीं आया, सुदीप की बात का क्या जवाब दे. एक निरीह दृष्टि डालकर बेजान-सी अपने काम में लग गयी.

अब वह एकदम शांत हिम की तरह ठंडी हो गयी है. उसे लगा उसका अस्तित्व भी बर्फ की तरह जमकर सर्द हो गया है. जिसका काम पिघलकर नदी की धारा बनना या वाष्प बनकर फिर से बरसना ही होता है. थोड़ी-बहुत अपेक्षा जो कभी उसने सुदीप से की थी वह भी इस घटना से सदा-सदा के लिए समाप्त हो गयी ! एक डुबकी ... दो डुबकी ... और वह स्नेह से सराबोर हो उठी ! □

● बी-78, गांधी नगर, बांद्रा (पूर्व) बंबई-400051

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असली जगह की तलाश

■ विजय मोहन सिंह

श्रीमती मन्नू भंडारी छठे दशक की शुरुआत से कहानियां लिख रही हैं. किंतु महत्वपूर्ण यह नहीं है कि वे तब से लगातार लिख रही हैं, बल्कि यह है कि वे तब से 'बहते आंदोलनों' से प्रायः अप्रभावित रहकर भी प्रासंगिक बनी हुई हैं. उनकी कहानियों को पढ़ते हुए प्रायः यह लगता है कि उनमें एक प्रकार की 'शिल्पहीनता' है (शिल्पहीनता शब्द का व्यवहार यहां सापेक्ष अर्थों में ही किया जा रहा है) और जहां वे शिल्प के प्रति थोड़ी अधिक सजग हुई हैं, वहां असफल हुई हैं—जैसे इस संग्रह की कहानी 'स्त्री सुबोधिनी' में. लेकिन इस 'शिल्पहीनता' के बावजूद उनकी कहानियां 'अपील' करती हैं. उनकी कहानियों को समझना इस 'अपील' को हो समझना है. निर्मल वर्मा की कहानियां भी 'अपील' करती हैं, पर वे 'शिल्पहीनता' नहीं हैं. निर्मल वर्मा शिल्प के प्रति अत्यंत सजग हैं. . .हिंदी कहानी में अज्ञेय के बाद सबसे ज्यादा! लेकिन निर्मल वर्मा की 'अपील' और मन्नू भंडारी की 'अपील' में बहुत फर्क है. बल्कि दोनों दो छोर के उदाहरण हैं. मन्नू भंडारी की कहानियों में जमीन की निकटता (डाउन टू अर्थ) की अपील है, वे फिलासोफाइज भी नहीं करतीं. . .

हिंदी कहानी का मिजाज

दरअसल इन कहानियों में सहजता के साथ जुड़ी हुई जो चीज है—वह है एक प्रकार का 'कॉमनसेंस'. यह 'कॉमनसेंस ही अपील करता है. इस प्रसंग में हम यह तो कह सकते हैं कि कुछ कम ज़ोर या अपे .ाकृत असफल कहानियां हैं. पर उन्हीं के बारे में यह कतई नहीं कहा जा सकता कि वे हमारे चारों ओर की ज़िंदगी को बिना किसी लाग लपेट के पेश नहीं करतीं. यह इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि एक प्रकार का बनावटीपन, प्रदर्शनप्रियता और इसलिए एक बुनियादी बेईमानी आज की अनेक हिंदी कहानियों का मिजाज़ बन गयी है. ऐसी कहानियां अपनी ही संवेदना को झुठलाने वाली कहानियां हैं. (वह कहानियां कौन और कैसी हैं. इसकी चर्चा हम किसी अन्य प्रसंग में करेंगे) इसलिए मन्नू भंडारी की कई कहानियां लोगों को कुछ पिछड़ी हुई कहानियां भी लग सकती हैं. मसलन इस संग्रह की पहली ही कहानी 'आते जाते यायावर' को लें. यह कहानी आज की छद्म आधुनिकता के खिलाफ लिखी गयी है. यानी स्त्रियों के इस्तेमाल के लिए यह आधुनिकता कैसे एक जाल का काम करती है, कहानी इसे ही बताती है. इस तरह कहानी में 'नयी बात' कुछ भी नहीं है. उसमें किसी प्रकार की 'उपचार वक्रता' भी नहीं है. सब कुछ वही जो हम रात दिन देखते-सुनते, जानते और प्रायः प्रयोग में भी लाते हैं. किंतु कहानी में अगर यही सारी बातें 'पुरुष-प्रभुत्व' को और इसी रूप में पुरुष की नीचता प्रमाणित करने के लिए लिखी गयी होती तो यह अपनी इस अत्यंत सामान्य सामग्री के साथ अत्यंत सामान्य कहानी होती. लेकिन कहानी आधुनिकता के संदर्भ में पुरुष के 'छल' को जितना खोलती है उतना ही स्त्री के छल को भी. कहानी की 'स्त्री' को पता है कि वह 'फंसाई' जा रही है, एक तथाकथित आधुनिक पुरुष के द्वारा चुस्त आधुनिक जुम्लों में दार्शनिकता बघारने के पीछे क्या है, यह उसे अच्छी तरह पता है. उसकी पद्धति और परिणति को भी वह पहचानती है. पर इस 'समझ हरेक राज़ को मगर फरेब खायेजा' में भी एक 'थ्रिल' है. इस 'थ्रिल' को स्वीकार करते ही वह अपनी भी एक बुनियादी कमज़ोरी को स्वीकार कर लेती है।

"लीक तोड़ना, संस्कारों से मुक्त होना इन मुहावरों का चारा डालने के लिए कैसी खूबसूरती से उपयोग किया जाता है आजकल···सचमुच आदमी तेज़ है और किसी को फंसाने के सारे हथकंडों से लैस···भीतर ही भीतर कुछ कुलबुलानेलगा. . .मैंने बड़ी तौलती-सी नज़र से एकबारउसे देखा."

पखवारे की पुस्तक

धीरे-धीरे कहानी का स्वर ऐ[...] बन जाता है कि कौन किसका इस्तेमा[...] कर रहा है—कहना मुश्किल हो जा[...] है. अगर छल है तो दोनों तरफ है और [...] पूरी संवेदना का झूठ—उजागर हो जा[...] है. कहानी बिना किसी 'किल्शे' [...] 'जिप्सी होना', 'यायावर होना' आदि रोमांटिक जुमलों को हास्यस्पद ब[...] देती है. जबकि यह जानना दिलचस्प [...] कि कहानी में सारी बातचीत 'किल्शेज़' में होती है. जिप्सी, यायावर, निरुद्दे[...] निरर्थक, भटकना, अतीत की छा[...] आदि. पर 'किल्शेज़' का इस्तेमाल य[...] उन्हें 'किल्शेज़' साबित करने के लि[...] ही हुआ है. सारी बातचीत और सं[...] में जो झूठ है—उसे व्यक्त करने के लि[...]

जन्नत की हकीकत

मन्नू भंडारी की अधिकांश कहानि[...] का टोन 'माइल्ड होता है. उनका ट्रीटमें[...] भी बहुत धारदार नहीं होता. वे प्रा[...] मध्यमवर्गीय विवशताओं की कहानि[...] लिखती हैं. जिनमें पात्र कुछ न कर पा[...] की स्थिति में रहते हैं. उन में एक प्रका[...] की निरीहता और परिस्थितियों के प्र[...] समर्पण का भाव दीखता है: 'रेत [...] दीवार' और 'एखाने आकाशनाइ' [...] इसी तरह की मूक निरीहता है. सब कु[...] समझने, पर कुछ न कर पाने वाले पा[...] 'रेत की दीवार' में इसे भुगतता हु[...] 'पुरुष' है तो 'एखाने आकाशनाइ' में स्त्री[...] 'रेत की दीवार' में भी सब कुछ सुपरिचि[...] है—लगभग 'डिप्टी कलक्टरी' वा[...] स्थितियां हैं. वहां डिप्टी कलक्टर न ब[...] पाने की दीनता है तो यहां इंजीनिय[...] बन जाने की रिक्तता का एहसा[...] —एक बिखरते हुए निम्नमध्यमवर्गीय परिवार की आर्थिक स्थिति ही नहीं उमीदें भी कथानक को इंजीनियर बनने के लिए दांव पर लगी हैं. पर इंजीनियर बनने वाले युवक को इस 'जन्नत की हकीकत' पता है—"इंजीनियर बन भी गये तो क्या! बेकार इंजीनियर्स यूनियन की सदस्य[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही तो!" औपनिवेशिक देश में ही हर बाप अपने बेटे को डिप्टी कलक्टर बनाने का सपना देखता है, पर वह सपना टूटता है क्योंकि हर लड़का तो डिप्टी कलक्टर नहीं हो सकता. पर यहां घर भर को भूखा रखकर बेटे को इंजीनियर बनाया जा रहा है. . .खून से सींच-सींच कर! पर बेटे को मालूम है कि इंजीनियर बन जाना नौकरी पाने की गारंटी नहीं है. एक बेहद महंगी पढ़ाई, उसके साथ जुड़ा एक झूठा गौरव बोध और फिर उसकी खौफनाक परिणति! ये सारी बातें उसे कई तरह से छोटा और हीन बना देती हैं? जबकि शायद होना इसका उलटा चाहिये! पर कहानी इसके आगे भी है. एक ज्यादा जटिल बोध से जुड़ी हुई. लड़के की इंजीनियर बनाने की कामना के पीछे पिता और परिवार का एक निरीह सा दीखने वाला पर लिजलिजा सा स्वार्थ है! उसे लगता है यदि यह एक शोषण और षड्यंत्र काजाल है जो इसके इर्द-गिर्द बुना जा रहा है

'ऊपर से सीधे सादे दीखने वाले बाबू उसे बहुत तेज और घाघ लगे. उसे लगा बाबू—अम्मा की अतिरिक्त सहनशीलता और त्याग, चंदा की समझदारी जैसे एक गुप्त षड्यंत्र के हिस्से हैं, जो उसके खिलाफ रचा गया है.'

न आकाश, न बतास

पर कहानीकार तथा कथानायक दोनों को पता है कि इससे निस्तार नहीं है, इसलिए कहानी इसी 'नोट' के साथ खत्म हो जाती है :—समझदारी और विवशता के साथ ! वैसे भी समझदारी एक सीमा के बाद विवश तो बनाती है.

यह जानकार विवशता संग्रह की अंतिम कहानी 'एरवाने आकाशनाइं' में और भी अधिक स्पष्ट हो गयी है. यह कहानी एकवर्गीय संदर्भ में 'शहर' और 'गांव' दोनों की हकीकत पेश करती है—दोनों के बीच एक पुल की तरह जुड़ी हुई! कुछ दार्शनिक अंदाज में कहेंगे (जो कि कहानी में प्रत्यक्षतः नहींहै!) कहानी 'सुख' तलाशने की 'फ्यूटिलिटी' व्यक्त करती है—लेखा कलकत्ता में नौकरी करती है, अध्यापिका है. काम करते-करते उसने अपनी हड्डी-

मन्नू भंडारी

हड्डी निकाल ली है और ऐसी ही जिंदगी अपने आस-पास देखती है! एक और नयी जिंदगी शुरु करने का उत्साह, दूसरी ओर चरमराती गृहस्थियां! कलकत्ता—महानगर वह जगह है जहां न आकाश है, न बतास! दूसरी ओर गांव है—जहां खूब नीला बड़ा-सा आसमान है, खुली हवा है, हरे भरे खेत और अमराइयां हैं. पर. .? पर भयानक संकीर्णता है, छोटे-छोटे घिनौने पारिवारिक ईर्ष्या-द्वेष हैं! वहां (शहर में) लड़-झगड़कर भी एक तरह के 'वरण की स्वतंत्रता' है सुख भले न हों, पर यहां घुटती-घिसटती ज़िंदगियां हैं! 'सुरेश' शहर जाना चाहता है: "भाभी, यदि मैं कलकत्ता आ जाऊं तो कुछ ऐसा प्रबंध नहीं हो सकता कि काम भी मिल जाये और पढ़ाई भी चलती रहे?"

सुरेश के लिए शहर स्वर्ग है—जहां 'आकाश नहीं है, बतास नहीं !' —यहां घिनौनी-घुटन है.-शहर और गांव के साथ जुड़े हुए ज़िंदगी के इस सवाल को कहानी अनायास जिस तरह सामने ला देती है, वह हिंदी कहानियों में विरल हैं 'सुख' का यह सवाल अस्तित्ववादी नहीं है, अपने देश में हमारी स्थिति तथा आर्थिक हालातों से ताल्लुक रखता है.

सोचना और चाहना

एक ऐसी ही विवशता है 'शायद' कहानी में. बाहर रहकर नौकरी करता पति और कहीं दूर के शहर में खस्ताहाली में जीता परिवार. 'राखाल' को खामख्याली है कि वह दूर है तो क्या हुआ, जहां भी उसका परिवार है, उसका है वह वही ज़िंदगी जी रहा होता जो वह सोचता और चाहता है! पर वह भूल जाता है कि उसकी शारीरिक अनुपस्थिति उसके परिवार को उस तरह 'उसका' नहीं रहने देती, जैसे वह चाहता है बल्कि एक तरह से उसका परिवार' उसका रहता ही नहीं, वह हर छोटी चीज के लिए आसपास के 'दूसरों' का मोहताज ही नहीं रहता, उनके 'सहयोग' से जीता है. पर 'राखाल' के 'गृहस्वामी' अंह को यह स्वीकार नहीं, वह अपने छुट्टी के दिनों में उसे तोड़ना चाहता है, पर खुद टूट कर लौटता है, इस अहसास के साथ ही वह खुद भी वहां एक अस्वाभाविक और नकली ज़िंदगी जीता रहा है और अपने परिवार की 'स्वाभाविक' ज़िंदगी भी में उसने बाधा डाली है! सच्चाई यह है कि वे वहां (चाहे जैसे भी) स्वाभाविक है और वह यहां:—

". . .एकाएक उसे लगने लगा कि शायद वह एक बहुत ही नकली से माहौल से रहकर लौटा है. शायद माला कई बातों में केवल उसके डर के मारे ही चुप रही. बच्चू मन मारकर पढ़ने बैठता था. अब वह निश्चित होकर बस्ता पटककर के गराज या फुटपाथों पर खेलता फिरेगा. . . .छोटू शंकर के कंधों पर टंगकर तबला बजाया करेगा...राखाल नीचे उतर आया. मशीनों के बीच पहुंच उसे एक अजीब सी राहत मिली. लगा जैसे वह अपनी असली जगह आ गया."

जाहिर है कि यह 'असली जगह' भी भ्रम ही है; 'शायद असली जगह कहीं नहीं है! ये सारी कहानियां उस 'असली जगह' की तलाश ही करती हैं, जहां आदमी महसूस करे कि वह अपनी पूरी 'उपस्थिति' के साथ है! □

चर्चित पुस्तक

त्रिशंकु

प्रकाशक: अक्षर प्रकाशन
अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-2
मूल्य : बारह रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हलचल

थैंक्यू मि. ग्लाड

महाराष्ट्र नाट्य मंडल, रायपुर द्वारा प्रस्तुत प्रदर्शन के एक दृश्य में वीर भूषण पटनायक व उमा की भूमिका में क्रमशः मुकुंद पराटकर तथा मीना घाट. निर्देशक थे—प्रो. जोगलंकर.

मराठी के प्रसिद्ध लेखक अनिल बर्वे का उपन्यास "थैंक्यू मि. ग्लाड" का नाट्य काफ़ी चर्चित रहा है. रूपांतर में लेखक ने मूल उपन्यास के

'उमा'— 'भूषण' : क्रांति में भावुक क्षण

ऐसे अंश नहीं दिये हैं, जो नाटक को विद्रोही एवं क्रांतिकारी मुद्रा प्रदान करते. इस तरह लेखक व्यवस्था से जहां सीधे टकराव से स्वयं का बचा ले गया है वहीं सामान्य जनता की नक्सलवाद के प्रति सहज उत्सुकता को भुनाने और स्वयं को अत्यन्त चतुराई के साथ क्रांतिकारिता की मुद्रा में दिखाने का सफल प्रयोग किया है. लेखक अपने इस चातुर्यपूर्ण कर्म में न केवल आज भी सफ़ल है, वरन इमरजेंसी में भी इस नाटक के मंचन ने उसे एक अलग किस्म की प्रतिष्ठा प्रदान की थी. इस गरीब देश का तथाकथित छद्म क्रांतिकारी बुद्धिजीवी किस तरह इस गरीब जनता की संभावनाओं के साथ खिलवाड़कर उन्हें सही नेतृत्व से वंचित करता है—यह नाटक इसका जीवंत प्रमाण है.

विभुकुमार

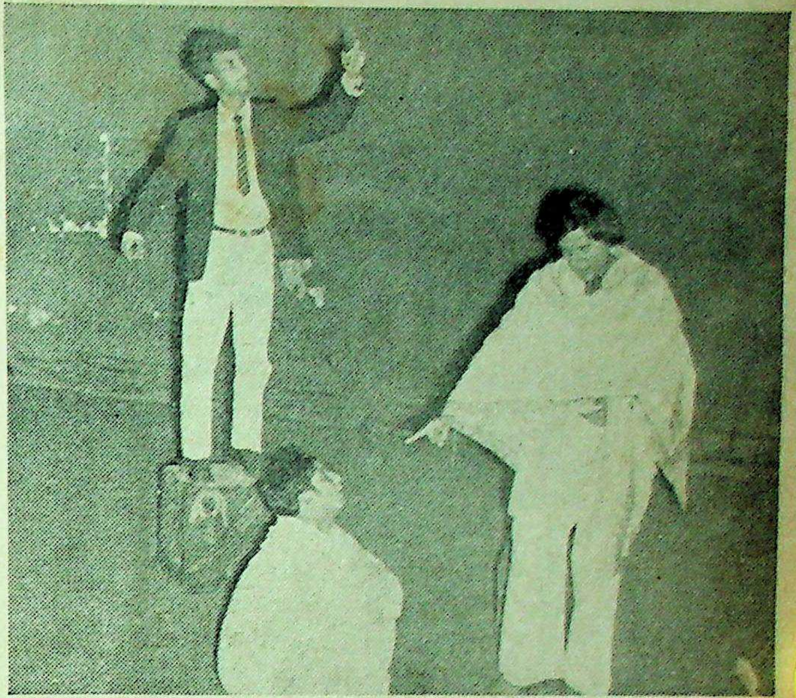

'क्लर्क', 'विश्वामित्र', 'क्रांति बाबू' : नाटक का एक भावपूर्ण दृश्य

शंबूक की हत्या

गत दिनों 'श्रीराम कलाकेंद्र,' दिल्ली में नाट्य संस्था 'शून्य' द्वारा आयोजित नरेंद्र कोहली के बहुचर्चित व्यंग्य नाटक 'शंबूक की हत्या' के एक संवेदनात्मक दृश्य में सुरेश भारद्वाज (क्लर्क), किरण खन्ना (विश्वामित्र) और शाम चोपड़ा (क्रांति बाबू). चंद्रमोहन के निर्देशन में इस सार्थक प्रदर्शन के अन्य प्रमुख कलाकार थे—सर्वश्री शिवकुमार शर्मा, विनोद गुप्ता, सुमन शुक्ला, राजीव कौशिक, रमेश खन्ना, बी. एस. राठौर, भरत धवन, योगेश वर्मा और कु. पोशिया मुकर्जी.

विवरण : प्रेम

नगरपुत्र हंसता है

नवलेखन मंच द्वारा धर्मेंद्र गुप्त के सद्यः प्रकाशित उपन्यास 'नगर पुत्र हंसता है' पर प्रख्यात साहित्यकार श्री विष्णु प्रभाकर की अध्यक्षता में 17 फरवरी शनिवार को 'राजस्थान सूचना केंद्र' नयी दिल्ली में आयोजित परिचर्चा गोष्ठी में बोलते हुए श्री अजित कुमार ने कहा, 'मैं ऐसी कृति को अच्छी कृति मानता हूं जिसको एक से अधिक कोणों से पढ़ा और समझा जा सके.

दरअसल, अवमूल्यन एक ऐसी प्रक्रिया है कि जिसमें इस उपन्यास के सभी पात्र पड़े हुए हैं, गुणाकर समेत. सबसे अधिक अगर कोई अवमूल्यन करता है तो वह गुणाकर ही करता है. अपने सारे संबंधों को अवमूल्यन करता है, बदले में उसको अवमूल्यन मिलता है. यह सारी की सारी प्रक्रिया अवमूल्यन की इस उपन्यास में छायी हुई है.

डॉ हरदयाल ने कहा, 'संरचना के हिसाब से मुझे लगता है कि धर्मेंद्र गुप्त का यह उपन्यास रिपोर्ताज शैली का है.

यह जो नगर सभ्यता है और हमारे जो परंपरागत संस्कार हैं, उसको देखते हुए यह उपन्यास हमको कई झटके देता है. जैसे माधवी का प्रसंग है, लगता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

112921

कि माधवी को लेकर एक कथा पूरी की पूरी कहीं छूट गयी. लेकिन एक क्लाईमैक्स के साथ माधवी संबंध जुड़ता है और स्वयं मैं या उपन्यासकार उसे भूल जाता है. इस तरह का राजदान प्रसंग भी चलता है और उसके बाद वह प्रसंग समाप्त हो जाता है. इसी तरह से और जो प्रसंग हैं, वह एक बार उठते हैं और कुछ देर बाद उन्हें छोड़ दिया जाता है. सारे प्रसंगों को उठाना, महानगर की जो विसंगतिया हैं उनकी ओर संकेत करना है. महानगर में संबंध तात्कालिक होते हैं. कुछ समय के लिए वह संबंध बनते हैं और वह नदी नाव संयोग जैसे होते हैं. जिस भोलेपन के साथ इतनी गहरी बात कहने में धर्मेंद्र गुप्त समर्थ हो गये हैं वह बहुत महत्वपूर्ण चीज़ है.

डॉ. नरेंद्र मोहन ने कहा, 'प्रमुख पात्र गुणाकर अपनी मान्यताओं के विरुद्ध बात करता है. उपन्यास में यौन संबंधों की यांत्रिकता की ओर संकेत किया है और संघर्ष की स्थितियां उपन्यास में हैं, लेकिन लेखक प्रेम संबंधों के मोह में उन्हें छोड़ देता है. अवमूल्य का चित्र अच्छा है, व्यापक है, परंतु उपन्यास शुरू से भारतीय रुपये के अवमूल्यन के प्रसंग की ओर बार बार संकेत करना खटक सकता है. यह लेखक की नीति हो सकती है. सारी बात क्रूर शहरी व्यवस्था के खिलाफ खड़ी करने में समा गयी है.

डॉ. विनय ने कहा, 'रुपये के अवमूल्यन की बात मानवीय संबंधों के अवमूल्यन की ओर संकेत करती है. व्यक्ति और व्यवस्था के टकराव की बात भी उभर कर सामने आती है. पूरा उपन्यास एंटी रोमांटिक है. सभी पात्र वर्तमान में अधिक जीते हैं. कुछ बातें सामान्य पाठकों को उद्वेलित करती हैं. यह उपन्यास बहुत से उल्लेखनीय उपन्यासों में रखा जा सकता है.

श्री राजकुमार सैनी ने कहा, 'गुणाकर जो है वह एक अर्थ में अवमूल्यन का प्रतीक है. वह सिद्धांतहीन है. गुणाकर राइटर का स्पोक्स-मैन है.

इस उपन्यास में जो मुझे सबसे बड़ी निराशा हुई वह यह कि इसमें कहीं भी आत्मलोचन नहीं है. पूरे समाज की आलोचना है, सभी पार्टियों की आलोचना है, हर व्यक्ति की आलोचना है. अगर कुछ नहीं है तो आत्मलोचन नहीं है. इससे बड़ी रोमांटिकता और क्या है ?

श्री हंसराज रहबर ने कहा, 'यह उपन्यास मैं पढ़कर बोल रहा हूं, वरना बोलता न. इस उपन्यास को मैं बिल्कुल नहीं पढ़ सका. इसे उपन्यास नहीं कहा जा सकता, पुस्तक कह रहा हूं. जेम्स ज्वाइस पूंजीवाद की पतनोन्मुखता का प्रतिनिधि लेखक है और इसी से बिना कथानक के उपन्यास और कहानी लिखने की अस्वस्थ और पतनोन्मुख परंपरा चल पड़ी, जिसने जाने-अनजाने प्रतिक्रियावाद का हित पोषण होता है'

डॉ. रामदरश मिश्र ने कहा है, 'निश्चित रूप से गुणाकर लेखक का केंद्रीय पात्र है, जिसके माध्यम से लेखक यह बात कहना चाहता है कि गुणाकर बहुत बड़ा संघर्ष बहुत बड़ी लड़ाई लड़ने वाला पात्र नहीं है. लेखक ने उसमें आजकल की कुछ शक्तियां और उर्जा डालने की कोशिश की है. इसलिए ऐसा नहीं है कि गुणाकार के अनजाने ही सारी व्यवस्था या सारे संबंधों या सारी विसंगतियां नष्ट हो रही हैं. गुणाकार के माध्यम से हो रही हैं. मसलन गुणाकर टकराता है, कई जगहों से, स्त्रियों के संबंधों से, सारी सरकारी व्यवस्था से, सरकारी व्यवस्था का विरोध करने वाली जो पार्टी है, उसकी विसंगतियों से इस उपन्यास में जो रुपये के अवमूल्यन की बात बार-बार आती है, मुझे ऐसा लगता है कि प्रतीकात्मक जो अर्थ हो सकता है वह यह कि स्वयं केंद्र जब अवमूल्यित हो रहा है तो सारे संबंधों का अवमूल्यन स्वाभाविक ही है.

डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने कहा है, 'जिसको आप यथार्थवादी लेखन कहते हैं तो जब तक यथार्थ और आदर्श का टकराव नहीं है, वह यथार्थ, यथार्थ नहीं है. नगर में आप हैं तो नगर में ही गांव है. सच बात तो यह है कि जो बड़े-बड़े नगरों का निर्माण हुआ है वह बिना किसान और मजदूर के नहीं सकता.

श्री रमाकांत ने कहा, 'सबसे पहली बात है कि मैं रहबर जी की राजनैतिक राय से आज तक सहमत नहीं हुआ धर्मेंद्र गुप्त का उपन्यास बोर नहीं है, जैसा कि रहबर जी कहते हैं.

मैं अपनी यह राय देना चाहूंगा कि इसमें जीवन के अवमूल्यन को दिखाने में, संबंधों का अवमूल्यन, प्रेम का अवमूल्यन , बौद्धिक जीवन का अवमूल्यन, राजनीति का अवमूल्यन, अखबारों का अवमूल्यन, इन तमाम जगहों में जहां पर उनका पात्र जाता है, उस अवमूल्यन को वह हमारे सामने रखने में समर्थ है. और उनका प्रमुख पात्र गुणाकर, उसमें कोई कमी है तो यही कि 'उस अवमूल्यन से वह कोई टकराव की स्थिति प्रस्तुत नहीं करता.'

जगदीश चर्तुवेदी ने कहा, 'रहबर जी और राजकुमार सैनी के कथनों से मैं सहमत नहीं हूं कि उपन्यास का मुख्य पात्र संवेदनशील नहीं है. अपने मित्र कैलाश के प्रति और उसकी मृत्यु के बाद उसके परिवार के प्रति गुणाकर का जो व्यवहार रहा है वह बताता है कि वह बहुत संवेदनशील है. उपन्यास के अंत से मैं जरूर सहमत नहीं हूं.'

गोष्ठी में इसके अतिरिक्त सर्वश्री गोपाल कृष्ण कौल, कुलदीप बग्गा, महीप सिंह, प्रदीप पंत, हिमांशु जोशी, ललित शुक्ल, रमेश बत्तरा, द्रोणवीर कोहली, रमेश रंजक, आदि साहित्यकार भी उपस्थित थे.

अध्यक्षीय भाषण में श्री विष्णु प्रभाकर ने कहा, 'मुश्किल बात यह है कि आप ईमानदारी के साथ क्या कहते हैं कहीं छद्म तो नहीं है. कहीं डायरी रखकर गहरायी में जाकर यह सब कुछ करने की बात तो नहीं है. इंटैलेक्चुअल बनने की कोशिश तो नहीं है. उपन्यास के अंदर जो बहुत साधारण से पात्र आते हैं जैसे जिलाराम, या सीताराम चपरासी आदि वह सब बहुत सशक्त हैं.

उपन्यास में दादा का चरित्र महत्वपूर्ण है. इस पात्र का विकास आवश्यक था. मगर ऐसा नहीं हुआ. गुणाकर प्रारंभ में एक्स्प्लायट करने की मुद्रा अपनाये हुए है, पर अंत में स्वयं एक्स्प्लायट हो जाता है. इसी के साथ राजदान के चरित्र में जो एकदम बदल जाने की प्रवृत्ति है वह सब वास्तव में रोजी-रोटी का यथार्थ ही है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ख़ून के रिश्ते कितने गहरे...

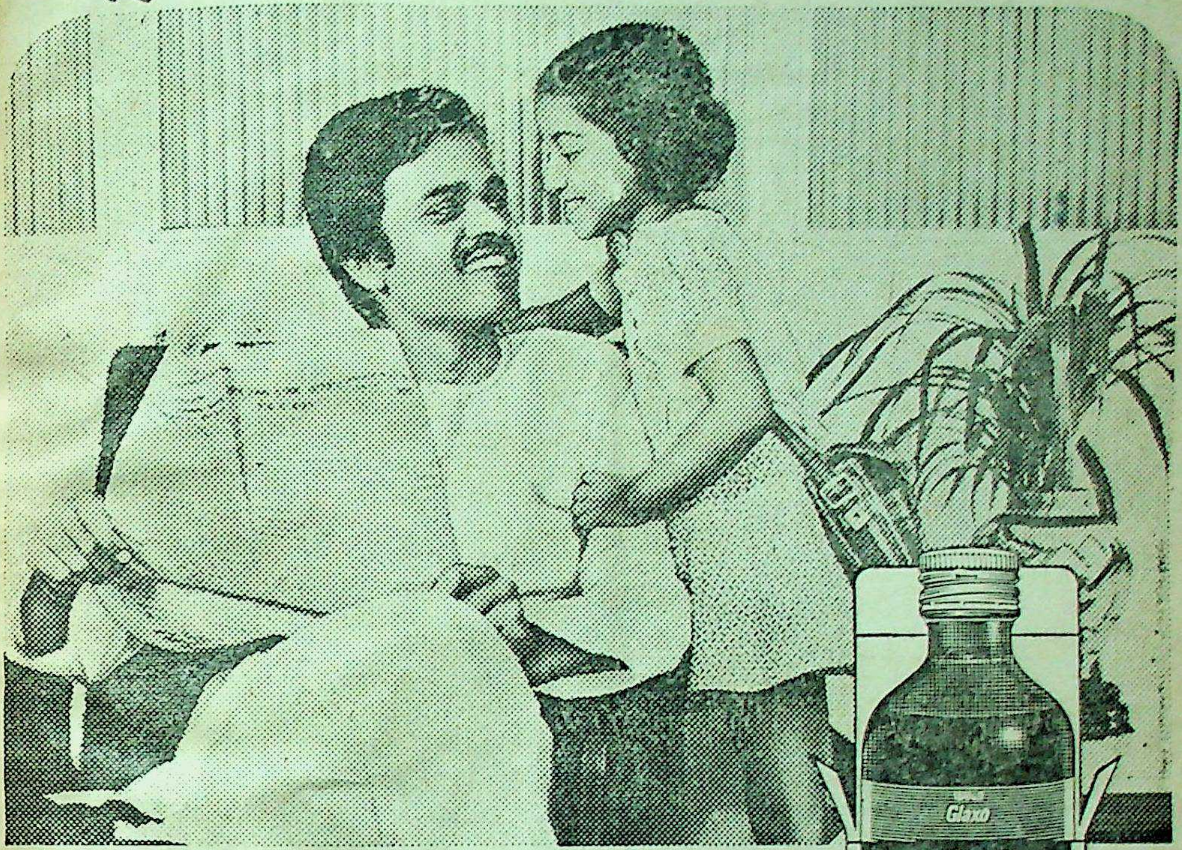

मिनाडेक्स का भी आपके ख़ून के साथ गहरा रिश्ता है

स्वस्थ ख़ून अच्छी सेहत का आधार है। और स्वस्थ ख़ून के लिये जरूरत है लौहतत्त्व की। मिनाडेक्स में लौहतत्त्व की प्रचुर मात्रा के कारण इसके हर चम्मच से आपके ख़ून को पूरा फ़ायदा मिलता है।

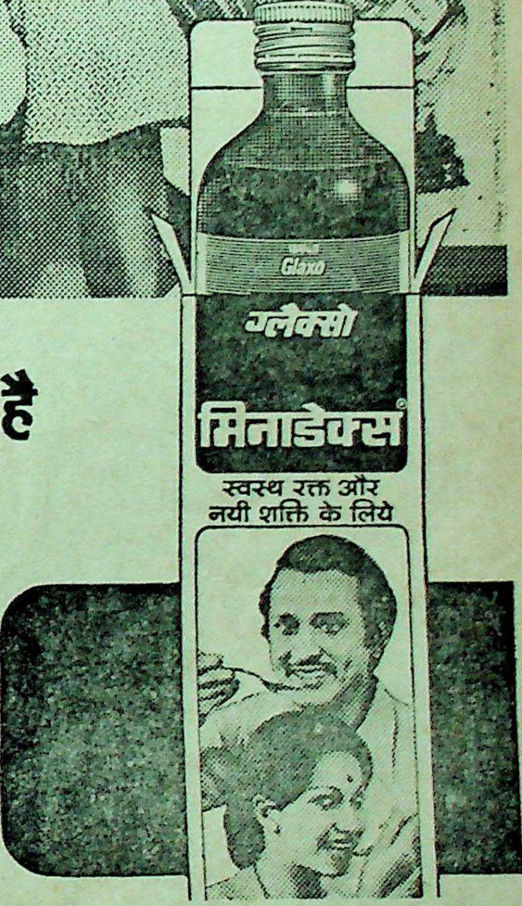

रक्तशक्ति दायक
मिनाडेक्स®

CASGM-19-203

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवाह संयोग नहीं!

सुनियोजित समाधान..

विवाह। आपके जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण फैसला। आपके सुखी जीवन का स्थाई आधार। जन्म पत्री के मिलने से जीवन साथी तो मिल सकता है परन्तु उससे अधिक ज़रूरी है उन लोगों से सम्पर्क करना जिनमें से आप उचित चुनाव कर सकें।

क्या आप सब कुछ संयोग पर छोड़ देंगे? या सूझ बूझ से समस्या का समाधान करेंगे?

टाइम्स ऑफ इंडिया, दिल्ली में दिये गये वैवाहिक विज्ञापन उत्तर प्रदेश, दिल्ली, पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाना, राजस्थान, बिहार, मध्य प्रदेश तथा अन्य क्षेत्रों के लगभग १,६०,००० कुलीन तथा खुशहाल परिवारों में पढ़े जाते हैं। इन पाठकों की संख्या ८ लाख से भी अधिक है।

इन परिवारों की भी एक चिंता है। अपनी लड़की, अथवा अपने लड़के, के लिये सुयोग्य जीवन साथी ढूंढने की।

आइये और अपनी चिंता हमारे हवाले कीजिये।

टाइम्स ऑफ इंडिया, दिल्ली के माध्यम से लाखों परिवारों के सुख की नींव पड़ी है। कोई भी अखबार इतने संपन्न परिवारों तक आपको नहीं पहुंचा सकता।

वर्गीकृत वैवाहिक विज्ञापन आप :

■ हमारे कार्यालय में स्वयं आकर दे सकते हैं,

■ डाक द्वारा भेज सकते हैं,

अथवा

■ टेलीफोन पर बुक कर सकते हैं। (यह सुविधा केवल दिल्ली, शाहदरा, बल्लभगढ़, फरीदाबाद तथा गाज़ियाबाद के वर्गीकृत विज्ञापनदाताओं के लिये उपलब्ध है।)

■ फोन : २७३८९०, २७०१६१ एक्सटेन्शन-२२७।

आप किसी भी भाषा में अपना विज्ञापन भेजें, अंग्रेजी में अनुवाद हम करेंगे। यह सेवा निःशुल्क है।

टाइम्स ऑफ इंडिया, दिल्ली

वर्गीकृत विज्ञापन विभाग
७, बहादुरशाह ज़फ़र मार्ग, नई दिल्ली-११० ००२
फोन : २७३८९०, २७०१६१ एक्सटेन्शन २२७

टाइम्स ऑफ इंडिया, दिल्ली में वैवाहिक विज्ञापन दीजिये, अपने सुखी भविष्य से नाता जोड़िये।

Headstart/TOI/7919

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नव वधू को नसीहत

पीएनबी में बचत करने वाली महिला द्वारा

विवाह के अवसर पर मुझे उपहार के रूप में काफी रकम मिली। मैंने इसे पंजाब नैशनल बैंक की **बहुलाभकारी तथा वृद्धावस्था जमा योजना** के अन्तर्गत जमा करा दिया। अब यह रकम बढ़ते-बढ़ते इतनी बड़ी हो गयी है कि उसे हम मकान खरीदने आदि जैसी किसी बड़ी ज़रूरत के लिये काम में ला सकते हैं।

क्यों नहीं तुम भी, इस योजना से लाभ उठातीं।

रकम 100/- रुपये के गुणितों में 12 महीनों से लेकर 120 महीनों तक की किसी भी अवधि के लिये, जो कि तीन महीनों की गुणितों में हो, जमा करा सकती हो।

अधिक जानकारी के लिए हमारी निकटतम शाखा से सम्पर्क करें।

पंजाब नैशनल बैंक

(भारत सरकार का उपक्रम)

...भरोसे का प्रतीक!

बैनेट, कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स, 10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. जनरल-मैनेजर : डॉ. राम तरनेजा. पंजीकृत कार्यालय : डा. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएँ : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002; 139, आश्रम रोड, अहमदाबाद-380009; 105/7ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 15, मॉटियथ रोड, इग्मोर, मद्रास-600008; 407-1, तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; 26, स्टेशन एप्रोच, सडबरी, वेंबले, मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-903-9696.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने
की अनुमति–लाइसेंस सं. U-89

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar